PRAKRIT PRAVESHIKA

(प्राकृत–प्रवेशिका)

By

KOMAL CHANDRA JAIN,

M A, Prākṛtācārya Jaina Darśanācārya

Lecturer in Pali, Banaras Hindu University

With Foreword by

SIDDHEŚVARA BHATTĀCHĀRYA

M A (Hons) Ph D (London), D Litt (Lille),
Bar-at-Law (Gray's Inn) Kāvya-Tīrtha,
Nyāya Vaiśeṣika Ācārya (Gold Medallist)

Mayurbhanj Professor of Sanskrit & Head of the Department of Sanskrit and Pali, Banaras Hindu University

PRACHYA BHARATI PRAKASHAN

VARANASI

1964.

First Edition, 1964

Rs. 4/-

Published by Prachya Bharati Prakashan, Kamachha, Varanasi

Printed at the Tara Printing Works, Varanasi

आदरणीय नन्दकिशोर जी

को

सादर

समर्पित

जिनकी कृपा के लिए

आजन्म ऋणी बना रहूंगा

—कोमलचन्द्र जैन

विषय-सूची

व्याकरण

संकलन

महाराष्ट्री प्राकृत

शौरसेनी प्राकृत

मागधी प्राकृत

FOREWORD

An Introduction to Prakrit is a desideratum The sources of Indian culture are to be traced as much to Sanskrit as to Pali and Prakrit In spite of all contributions by modern scholars, the need for going back to the original will remain for ever From a narrower point of view, a student of Sanskrit has to face, for example in Sanskrit dramas, a lot of Prakrit Through Sanskrit rendering of the same, he cannot enjoy the flavour of original Prakrit He has to have access to the original In due recognition of this fact, the Banaras Hindu University has assigned a place to the study of Pali and Prakrit in the Post Graduate curriculum for Sanskrit

But here the University is confronted by the paucity of suitable reading material Woolner s Introduction to Prakrit has long disappeared from the market The University has therefore to fall back upon the *Karpura manjari* by Raja śekhara But it gives only a partial picture—Śaurasenī Prakrit How to provide for a full picture that does adequate justice to all the major streams—Maharastri, Śaurasenī, Mag adhi, Ardhamāgadhī, Jaina śauraseni and Jaina maharāstri ?

The Department of Sanskrit and Pali had to do some thing about it I therefore requested Sri K C Jain, Prakrta-Ācarya, Jaina darśana Ācarya, M A of the Department to set his hand to it and I am delighted that he has not spared himself to rise up to the occasion The result is the *Prākṛta praveśika* now being presented before the Public

The motive behind the work is to introduce the Post Graduate students of Sanskrit to Prakrit language An attempt has been made to strike a balance between the immediate need of such students and provision for a handy

apparatus for entering the realms of Prakrit literature which in magnitude is only next to Sanskrit In consonance with the original motive, Prakrit is sought to be explained in the light of Sanskrit—a stand which Prakrit grammarians like Vararuchi have taken

The work in its modest form is broadly divided into elementary grammar and collections Regarding grammar Mahārāstrī Prakrit, as in Vararuchi, is taken as the model Individual variations in other Prakrits have been noted before the specimens of every other Prakrit The rules of grammar have been authenticated by relevant rules from traditional grammarians, together with their meanings in Hindi at the footnotes Woolner has been improved upon by incorporating additional topics, and latest publications on Prakrit have been taken notice of as far as the limited space permits The approach has therefore been grammatical and to some extent philological

Collections are intended for providing specimens of different types of Prakrit as they grew through the ages They are literary rather than technical They should therefore read pleasant Every piece again is attended with its Sanskrit rendering so that the correspondence between the two may be thoroughly established

I shall be very glad indeed if this venture satisfies a long felt want I wish the work all success

Banaras Hindu University
Nov 12, 1964 S BHATTACHARYA

भूमिका

संस्कृत-साहित्य भारत की अमूल्य सम्पदा रही है। प्राचीन काल से आज तक काशी, नवद्वीप, मथुरा, काश्मीर आदि नगरों की प्रतिष्ठा केवल संस्कृत साहित्य के अध्ययन और अध्यापन के लिए बनी हुई है। सच तो यह है कि भारत का गौरव इन्हीं नगरों में विकसित होकर पल्लवित होता रहा है।

विदेशी शासनकाल में निस्सन्देह इस दिशा में कुछ अवनति हुई थी, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पुन इस दिशा में विशेष ध्यान दिया गया। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय है। सन्तोष का विषय है कि लोगों की रुचि संस्कृत-साहित्य की ओर बढ रही है।

यहा यह स्म ण रखना होगा कि संस्कृत साहित्य के ज्ञान के लिए पालि एव प्राकृत का मौलिक ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि संस्कृत के साथ इन भाषाओं का चोली दामन सा सम्बन्ध है। यही कारण है कि भारत के अधिकांश विश्वविद्यालयों के, जहां संस्कृत की एम० ए० कक्षाएँ हैं, पाठ्यक्रमों मे पालि प्राकृत को आंशिक रूप से स्थान दिया गया है। वास्तविकता यह है कि पालि प्राकृत के मौलिक ज्ञान के बिना संस्कृत साहित्य का आनन्द एव ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

सन् १९६३ मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के एम० ए० (संस्कृत) पाठ्यक्रम मे निर्धारित प्राकृत का अध्यापन भार मुझे सौंपा गया। निर्धारित पाठ्यक्रम मे 'कर्पूरमञ्जरी' एवं प्राकृत व्याकरण (प्रारम्भिक ज्ञान) था। कर्पूरमञ्जरी पढाते समय मैंने यह अनुभव किया कि छात्रों को प्राकृत के व्याकरण को जान लेने के प्रति उत्सुकता है। अधिकांश छात्रों ने मुझसे इस सम्बन्ध मे सुझाव मागे कि इस विषय के अध्ययन के लिए कौन सी पुस्तक उपयोगी होगी? मैंने कुछ पुस्तकों के नाम बताये। किन्तु प्राय सभी छात्रों ने यह शिकायत की

कि ये पुस्तकें हमारे लिए अनुपयोगी हैं। हमें तो विभिन्न प्राकृतों का मौलिक ज्ञान प्राप्त करना है।

अन्त में मैंने 'ए० सी० वुल्नर कृत 'इण्ट्रोडक्शन टु प्राकृत' नामक पुस्तक पढने को दी जिसके प्रति छात्रों ने विशेष आग्रह दिखाया। खेद है कि उक्त पुस्तक अब अप्राप्य है। दूसरी ओर कर्पूरमञ्जरी जो मुख्यरूप से पाठ्य पुस्तक है को पढाते समय यह अनुभव किया कि शृंगार प्रधान पुस्तक होने के कारण छात्र छात्राएँ उसके प्रति ठीक ध्यान नहीं देते थे। इसके अतिरिक्त उक्त पुस्तक केवल शौरसेनी प्राकृत (जिसके पद्यांश को स्टेनकोनो ने बाद में महाराष्ट्री प्राकृत मे परिवर्तित कर दिया है) मे ही लिखी गयी है जब कि संस्कृत छात्रों से अन्य प्राकृतों के ज्ञान की भी अपेक्षा की जाती है।

ये सब ऐसी समस्याएं थीं जिसके कारण मैं किंचित चिन्तित हो उठा। इसकी चर्चा मैंने अपने विभागाध्यक्ष श्रद्धेय डा० सिद्धेश्वर भट्टाचार्य से की तो उन्होंने सुझाव दिया कि क्यों न मैं 'इण्ट्रोडक्शन टु प्राकृत' के आधार पर एक पुस्तक तैयार कर दू जिससे इन समस्याओं का हल निकल आये। प्रस्तुत पुस्तक उक्त सुझाव का ही परिणाम है।

प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में हमें दो मत दिखलाई पड़ते हैं। प्रथम मत के अनुसार 'प्रकृत्या स्वभावेन सिद्ध प्राकृतम्' या 'प्रकृतीना जनसाधारणमिदं प्राकृतम्' अर्थात् स्वभाव सिद्ध या जन साधारण की भाषा को प्राकृत कहते हैं। द्वितीय मत के अनुसार 'प्रकृति संस्कृत तत्र भव तत आगत या प्राकृतम्' अर्थात संस्कृत जिस भाषा की प्रकृति हो या जो भाषा संस्कृत से उत्पन्न हुई हो उसे प्राकृत कहते हैं। प्रथम व्युत्पत्ति ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है एवं द्वितीय प्राकृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से। प्रस्तुत पुस्तक संस्कृत छात्रों के लिए विशेष रूप से लिखा गया है। अत इसमें द्वितीय व्युत्पत्ति को महत्त्व दिया गया है। इसमें संस्कृत पदों को प्रकृति रूप में पहले लिया गया हैं, तत्पश्चात् उससे बनने वाले प्राकृत पदों को दिया गया है।

प्राकृत वैयाकरणों में भी दो सम्प्रदाय थे। प्रथम सम्प्रदाय के प्रमुख हेमचन्द्र थे तथा द्वितीय के वररुचि। प्रस्तुत पुस्तक में दोनों सम्प्रदायों का समन्वयात्मक ढंग प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में व्याकरण तथा द्वितीय भाग में प्रमुख प्राकृतों के विशिष्ट गद्यपद्यांशों का संकलन है।

प्रथम भाग में व्याकरण-सम्बन्धी मौलिक नियमों को सरल एवं आधुनिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। टिप्पणी में प्राचीन-परम्परा में रुचि रखने वाले छात्रों के लिए हेमचन्द्रकृत-प्राकृतव्याकरण एवं वररुचिकृत-प्राकृत-प्रकाश से सूत्र (अर्थ सहित) दिये गये हैं। कहीं कहीं उपयोगी शब्दों को प्राथमिकता देने के लिए सूत्रोक्त शब्दों के क्रम का मूल मे परिवर्तन करना पड़ा है। जहां कहीं हेमचन्द्र कृत संस्कृत-व्याकरण से पाणिनिकृत संस्कृत-व्याकरण में भिन्नता है, वहां पाणिनि सम्मत तथ्य को कोष्टक में दिया है। जैसे प्रथमा विभक्ति एकवचन संस्कृत प्रत्यय—सि (सु) आदि।

द्वितीय भाग में ६ प्रमुख प्राकृतों के विशिष्ट अंशों का संकलन किया गया है। गद्यपद्यांशों को ऐतिहासिक दृष्टि से क्रमबद्ध किया गया है। इससे छात्र विभिन्न प्राकृतों की विभिन्नकालीन धाराओं को सहज ही समझ सकेंगे। प्रत्येक प्राकृत के संकलन के पूर्व उसकी विशिष्टताएँ भी दी गयी है। तुलनात्मक रुचि की वृद्धि के लिए साथ में संस्कृत छाया भी दी गयी है। जहां कहीं मुझे व्याकरण से असम्मत पाठ मिले वहां व्याकरणसम्मत पाठों को कोष्टकों की सहायता से दिखाया है। संकलन करते समय मैंने इस बात में पूरी सतर्कता रखी है कि संकलित गद्य-पद्यांश सरल, आधुनिक एवं पठन-पाठन के योग्य हों।

इस बात का उल्लेख कर चुका हूं कि प्रस्तुत पुस्तक 'ए० सी० वुल्नर' रचित 'इण्ट्रोडक्शन टु प्राकृत' के आधार पर लिखी गयी है, किन्तु इसकी कुछ निजी विशेषताएं भी हैं। इण्ट्रोडक्शन टु प्राकृत' के कुछ तथ्यों को मैंने नहीं लिया है। उदाहरण के लिए अपभ्रंश भाषा तथा प्राकृत साहित्य का विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ मे नहीं है क्योंकि यह पुस्तक संस्कृत विद्यार्थियों को प्राकृत सिखाने की दृष्टि से लिखी गयी है। यहां एक बात और स्पष्ट कर दूं कि प्रस्तुत पुस्तक में पालि भाषा को स्थान नहीं दिया गया है, क्योंकि इस विषय पर अलग से एक पुस्तक तैयार की जा रही है।

दूसरी ओर इस पुस्तक में लिंग परिवर्तन, कारक, अव्यय, समास, तद्धितप्रत्यय, कृत्प्रत्यय एवं स्त्रीप्रत्यय नामक अध्याय अधिक हैं। अध्यायों में विषयवस्तु की प्रामाणिकता को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक ग्रन्थों से यथास्थान उद्धरण भी दिये गये हैं। साथ ही विभिन्न स्थलों पर भाषाविज्ञान सम्बन्धी आवश्यक नियमों की प्रामाणिक चर्चा की गयी है। प्रत्येक गद्य पद्यांशों की संस्कृतच्छाया भी दी गयी है।

अन्त में एक बात की चर्चा पुनः कर देना आवश्यक समझता हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक तैयार करने का उद्देश्य प्राकृत भाषा का व्यापक ज्ञान कराना नहीं है अपितु संस्कृत छात्रों के लिए प्राकृत का मौलिक ज्ञान कराना है। इस विषय पर व्यापक रूप से अध्ययन करने के लिए अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करना आवश्यक होगा। मेरी यह कृति यदि संस्कृत के छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

प्रस्तुत पुस्तक तैयार करने में मुझे जिन आदरणीय गुरुजनों के सुझाव तथा आशीर्वाद प्राप्त हुए हैं, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। सर्वप्रथम मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत एवं पालि विभाग के अध्यक्ष श्रद्धेय डा० सिद्धेश्वर भट्टाचार्य का विशेष रूप से आभारी हूँ जिनके सुझाव से ही मुझे यह पुस्तक लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई। उन्हीं के निर्देशन से यह पुस्तक पूर्ण रूप से तैयार हुई है। जबलपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग के अध्यक्ष श्रद्धेय डा० हीरालाल जैन का भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे हस्तलेखों को देखकर समय समय पर निर्देश दिये। भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना के प्रधान सम्पादक आदरणीय डाक्टर पी० एल० वैद्य जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ क्योंकि उन्होंने पाण्डुलिपि को आधुनिक रूप में तैयार करने में परामर्श तथा सन्दर्भ पुस्तकें देकर मेरे कार्य को सरल बनाया है। श्रीयुत भाई विश्वनाथ गुरुजी की समय समय पर सहायता प्राप्त की अतः उनके प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अगर इन विद्वानों का अमूल्य सहयोग प्राप्त न हुआ होता तो शायद मैं इसे इतना उपयोगी न बना पाता।

मैं अपने विद्वान-पाठकों तथा छात्रों से एक बात और कहना आवश्यक समझता हूँ कि अगर वे इस पुस्तक में और कोई कमी या त्रुटि पाएँ तो लेखक को कृपया सूचित कर दें ताकि अगले संस्करण में उन सबकी पूर्ति कर, उन समस्त कमियों को दूर किया जा सके।

भारती महाविद्यालय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी।
नवम्बर १९६४

—कोमलचन्द्र जैन

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१२	शेपस्तु	शेषस्तु
४५	८	माल[1]	मालं[1]
५४	११	हस्	हस
५९	२१	द्य	ञ्ञ
६०	९	झ्व	ञ्व
७३	२६	ऋद्धि	रिद्धि
७४	६	भणेन्तो	भणन्तो
८४	२३	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
९६	२	लोट्टणि	लोठनि
११३	१२	कृत्वा	श्रुत्वा
११३	१३	गत्त्रा	गत्वा
११५	२	श्रेणीकराजस्य	श्रेणिकराजस्य
१२३	१४	ज्ञात्वा कृत्वा	ज्ञात्वा श्रुत्वा
१२७	२१	वह्मचेर	बम्हचेर
१४१	२	रूपदेश.[1]	रुपदेश[1]

सङ्केत-विवरण

क्रम० = क्रमदीश्वरकृत प्राकृतव्याकरण

पि० प्रा० = प्राकृत भाषाओं का व्याकरण (मूलकेखक-पिशल)

मार्क० = मार्कण्डेय कृत प्राकृतसर्वस्व

वर० = वररुचिकृत प्राकृतप्रकाश

हे० = हेमचन्द्रकृत प्राकृतव्याकरण

पहला अध्याय

स्वर-परिवर्तन

अ > आ, समृद्धि = सामिद्धी, समिद्धी ; प्रकटम् = पाअडं, पअडं ।[1]
इ, व्यजनम् = विअणं ; मृदङ्गः = मुइंगो ।[2]
ई, हर = हीरो, हरो ।[3]
उ, प्रथमम् = पुढुमं, पढुमं, पुढमं, पढमं ।[4]
ऊ, अभिज्ञः = अहिण्णू ; आगमज्ञः = आगमण्णू ।[5]

---

१. आ समृद्धयादिषु वा ॥१।२।वर०॥
समृद्ध आदि शब्दों के आदि अ को विकल्प से आ हो जाता है ।
(उपसर्ग का पहला स्वर विकल्प से दीर्घ हो जाता है ।—देखिए पि. प्रा. पारा नं. ७७)

२. इदीषत्पक्वस्वप्नवेतसव्यजनमृदङ्गाङ्गारेषु ॥१।३।वर०॥
सूत्रपठित शब्दों के आदि अकार को इकार हो जाता है ।
(जिस शब्द में प्रथम अक्षर की ध्वनि पर बल पड़ता हो वहाँ प्रथम या द्वितीय अक्षर में स्थित अ को इ हो जाता है ।—देखिए पि. प्रा. नं. १०१)

३. ईर्हरे वा ॥८।१।५१।हे०॥
हर शब्द के आदि अ को विकल्प से ई हो जाता है ।

४. प्रथमे प-थोर्वा ॥८।१।५५।हे०॥
प्रथम शब्द के प एवं थ वर्ती अ को विकल्प से उ होता है ।
(प्राय. ओष्ठवर्ण के बाद आने वाले अ को विकल्प से उ होता है ।—तुलना कीजिए पि. प्रा. पारा नं. १०४)

५. ज्ञो णत्वेऽभिज्ञादौ ॥८।१।५६।हे०॥
अभिज्ञ आदि शब्दों में ज्ञ को ण्ण होने पर ज्ञ स्थित अ को उ हो जाता है ।
(प्रथमाविभक्ति के एकवचन में उः को ऊ हो जाता है ।)

ए, शय्या = सेज्जा, पर्यन्तम् = पेरन्त ।[1]

ओ, पद्मम् = पोम्म, पउम , नमस्कार = णमोक्कारो ।[2]

अइ, जलमयम् = जलमइअं, जलमअ ।[3]

आइ, न पुन = ण उणाइ, ण उणो, ण उण ।[4]

लुक्, अरण्यम् = रण्ण ।[5]

आ > अ, यथा = जह, जहा ,[6] आस्यम् = अस्स ।[7]

---

१. ए शय्यादिषु ॥१।५।वर०॥
शय्या आदि शब्दो के आदि अकार को एकार हो जाता है ।
शय्या आदि शब्द—
शय्याश्चर्योत्कराश्चर्यं पर्यन्तोत्करवल्लय ।
सौन्दर्यं चेति शय्यादिगण शेषस्तु पूर्ववत् ॥

२. (अ) ओत्पद्मे ॥८।१।६१।हे०॥
पद्म शब्द के आदि अ को ओ होता है ।
(ब) नमस्कार परस्परे द्वितीयस्य ॥८।१।६२।हे ॥
सूत्रपठित शब्दो के द्वितीय अ को ओ हो जाता है।
(ओष्ठ्यवर्ण के अनन्तर आने वाले संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व के अ को उच्चारण सौकर्य के लिए ओ होता है ।)

३ मयट्यइर्वा ॥८।१।५०।हे०॥
संस्कृत मय प्रत्यय के म मे स्थित अकार को विकल्प से अइ होता है ।

४ नात्पुनर्यादाइ वा ॥८।१।६५।हे०॥
न के बाद आने वाले पुनर् शब्द के अ को विकल्प से आइ होता है ।

५ लोपोऽरण्ये ॥१।४।वर०॥
अरण्य शब्द के आदि अ का लोप होता है ।

६ अदातो यथादिषु वा ॥८।१ ।वर०॥
यथा आदि शब्दों के आ को विकल्प से अ होता है ।
(क्रियाविशेषण के अंतिम अस्वरित आ को प्राय अ हो जाता है ।—देखिए पि प्रा. पारा नं ११२)

७. ह्रस्व संयोगे ॥८।१।८४।हे०॥
संयुक्तव्यञ्जन के पूर्ववर्ती दीर्घ स्वर को ह्रस्व हो जाता है ।

इ, सदा = सइ, सआ ; यदा = जइ, जआ ।[1]

ई, स्त्यानम् = थीणं, खल्वाटः = खल्लीडो ।[2]

उ, सास्ना = सुण्हा, आर्द्रम् = उल्लं, ओल्लं ।[3]

ऊ, आसारः = ऊसारो, आसारो ।[4]

ए, द्वारम् = देरं, दुआरं ; ग्राह्यम् = गेज्झं ।[5]

ओ, आली = ओली ।[6]

इ > अ, पथि = पहो,[7] इति विकसितकुसुमसरः = इअ विअसिअ-कुसुम-सरो ।[8]

उ, इक्षु = उच्छू, वृश्चिकः = विच्छुओ ।[9]

ई, सिंहः = सीहो, जिह्वा = जीहा ।[१]
ए, पिण्डम् = पेण्डं, पिण्डं ; सिन्दूरम् = सेन्दूरं, सिंदूरं ।[२]
ओ, द्विधाकृतम् = दोहाइअं, दुहाइअं ।[३]
ई > अ, हरीतकी = हरडई ।[४]
आ, काश्मीराः = कम्हारा ।[५]
इ, पानीयम् = पाणिअं, अलीकम् = अलिअं ।[६]
उ, जीर्णम् = जुण्णं, जिण्णं ।[७]
ऊ, हीनः = हूणो, हीणो ; विहीनः = विहूणो, विहीणो ।[८]
ए, पीयूषम् = पेऊसं, कीदृशः = केरिसो, ईदृशः = एरिसो ।[९]

---

१. ईत्सिंहजिह्वयोश्च ॥१।१७।वर०॥
सिंह तथा जिह्वा शब्द के आदि इ को ई होता है ।

२. इत एत्पिण्डसमेषु ॥१।१२।वर०॥
पिण्ड आदि शब्दो के इकार को एकार होता है ।
(संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व के इकार को एकार होता है –देखिए पि प्रा. पारा नं. ११८)

३. ओ च द्विधाकृञः ॥१।१६।वर०॥
कृञ् धातु के साथ द्विधा शब्द के इकार को ओकार होता है ।
(चकारादुत्वं च, सूत्रवृत्ति ।)

४. हरीतक्यामीतोत् ॥८।१।९९।हे०॥
हरीतकी शब्द में आदि ई को अ होता है ।

५. आत्कश्मीरे ॥८।१।१००।हे०॥
कश्मीर शब्द के ई को आ होता है ।

६. इदीतः पानीयादिषु ॥१।१८।वर०॥
पानीय आदि शब्दो के आदि ईकार को इकार हो जाता है ।

७. उज्जीर्णे ॥८।१।१०२।हे०॥
जीर्ण शब्द के ईकार को विकल्प से उकार होता है ।

८. ऊर्हीन-विहीने वा ॥८।१।१०३।हे०॥
हीन और विहीन शब्द के ईकार को विकल्प से ऊकार होता है ।

९. एत्पीयूषापीड बिभीतक-कीदृशेदृशे ॥८।१।१०५।हे०॥
पीयूष आदि शब्दों के ई को ए होता है ।

उ > अ, मुकुलः = मउलो, गुरुकम् = गुरूअं ।[1]
इ, पुरुषः = पुरिसो, भ्रुकुटिः = भिउडी ।[2]
ई, क्षुतम् = छीअं ।[3]
ऊ, दुर्भगः = दूहवो, दुहओ ।[4]
ओ, पुष्करम् = पोक्खरो, तुण्डम् = तोण्डं ।[5]
ऊ > अ, दुकूलम् = दुअल्लं, दुऊलं ।[6]
इ, नूपुरम् = निउरं, नेउरं, नूउरं ।[7]
ई, उद्व्यूढम् = उव्वीढ, उव्वूढं ।[8]

---

१. उतो मुकुलादिष्वत् ॥८।१।१०७।हे०॥
मुकुल आदि शब्दो के आदि उकार को अकार होता है ।
(एक शब्द में दो उकार होने पर प्रथम उकार को अकार होता है ।—देखिए पि. प्रा. पारा नं. १२२)
२. इत्पुरुषे रोः ॥१।२३।वर०॥
पुरुष शब्द के रु में स्थित उ को इ होता है ।
इर्भ्रुकुटौ ॥८।१।११०।हे०॥
भ्रुकुटि शब्द के आदि उ को इ होता है ।
३. ईः क्षुते ॥८।१।११२।हे०॥
क्षुत शब्द के आदि उकार को ईकार होता है ।
४. लुकि दुरो वा ॥८।१।११५।हे०॥
दुर् उपसर्ग के रेफ का लोप होने पर उ को विकल्प से ऊ होता है ।
५. उत ओत्तुण्डरूपेषु ॥१।२०।वर०॥
तुण्ड आदि शब्दों के उकार को ओकार होता है ।
(प्राय. संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व के उ को ओ होता है ।—देखिए पि. प्रा. पारा नं. १२४)
६. अद्दुकूले वा लस्य द्वित्वम् ॥१।२५।वर०॥
दुकूल शब्द मे ऊ को विकल्प से अ होता है तथा ल को द्वित्व होता है ।
७. इदेतौ नूपुरे वा ॥८।१।१२३।हे०॥
नूपुर शब्द मे ऊ को विकल्प से इ तथा ए होते हैं ।
८. ईर्वोद्व्यूढे ॥८।१।१२०।हे०॥
उद्व्यूढ शब्द मे ऊ को विकल्प से ई होता है ।

उ, हनूमान् = हणुमन्तो, मधूकम् = महुअं, महूअं।[1]

ए, नूपुरम् = नेउरं, नूउरं।

ओ, कर्पूरम् = कोप्परं, ताम्बूलम् = तंबोल।[2]

ऋ > अ, तृणम् = तणं, मृतम् = मअं, कृतम् = कअं।[3]

इ, ऋषिः = इसी, मृगांकः = मिअंको।[4]

उ, ऋतु = उऊ, परभृतः = परहुओ।[5]

ऊ, मृषा = मूसा, मोसा, मुसा।[6]

ए, वृन्तम् = वेण्टं, विण्टं, वोण्टं।[7]

ओ, मृषा = मोसा, मुसा।

---

१ (अ) उर्भ्रहनूमत्कण्डूय-वातूले ॥८।१।१२१।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दों के ऊ को उ होता है।
(ब) मधूके वा ॥८।१।१२२।हे०॥
मधूक शब्द के ऊ को विकल्प से उ होता है।

२ ओत्कूष्माण्डी-तूणीर कूर्पर-स्थूल-ताम्बूल-गुडूची-मूल्ये॥८।१।१२४।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दों के ऊ को ओ होता है।
(उ की तरह ऊ भी संयुक्त व्यंजन से पूर्व आने पर ओ हो जाता है।— देखिए पि प्रा पारा नं. १२६)

३ ऋतोत् ॥८।१।१२६।हे०॥
आदि ऋकार को अ होता है।

४. इदृष्यादिषु ॥१।२८।वर०॥
ऋषि आदि शब्दों के आदि ऋकार को इकार होता है।

५. उदृत्वादिषु ॥१।२९।वर०॥
ऋतु आदि शब्दों के ऋकार को उकार होता है।
(ओष्ठ्य वर्णों के बाद ऋ या ऋ के बाद उ आने पर ऋकार को उकार हो जाता है।—तुलना कीजिए पि. प्रा. पारा न. ५१)

६ उदूदोन्मृषि ॥८।१।१३६।हे०॥
मृषा शब्द में ऋ को उ, ऊ तथा ओ होता है।

७. इदेदोद्वृन्ते ॥८।१।१३९।हे०॥
वृन्त शब्द के ऋ को इ, ए तथा ओ होता है।

ए, शैल = सेलो, शैत्यम् = सेत्तं ।[1]

ओ > अ, अन्योन्यम् = अन्नन्नं, अन्नुन्नं ; प्रकोष्ठ = पवट्ठो, पउट्ठो ।[2]

ऊ, सोच्छ्वासो = सूसासो ।[3]

अउ, गोक = गउओ, गौः = गऊ ।[4]

आअ, गो = गाअ गाओ (पुं०) गाई (स्त्री०) ।

औ > अउ, पौरः = पउरो, कौरव = कउरवो ।[5]

आ, गौरवम् = गारवं, गउरवं ।[6]

उ, सौन्दर्यम् = सुन्देरं, सुन्दरिअं ; शौण्डः = सुण्डो ।[7]

ओ, कौमुदी = कोमुई, यौवनम् = जोव्वणं ।[8]

आव, नौः = नावा ।[9]

---

१. ऐत एत् ॥१।३५।वर०॥
आदि ऐकार का एकार होता है ।

२. ओतोद्वान्योन्य-प्रकोष्ठातोद्य-शिरोवेदना-मनोहर सरोरुहे क्तोश्च वः ॥८।१।१५६।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दों के ओ को विकल्प से अ तथा यथासम्भव ककार तथा तकार को व आदेश होता है ।

३. ऊत्सोच्छ्वासे ॥८।१।१५७।हे०॥
सोच्छ्वास शब्द के ओ को ऊ होता है ।

४ गव्यउ आअः ॥८।१।१५८।हे०॥
गो शब्द के ओ को अउ आअ आदेश होते हैं ।

५. अउ पौरादौ च ॥८।१।१६२।हे०॥
पौरादि तथा कौक्षेयक शब्द के औ को अउ होता है ।

६. आच्च गौरवे ॥८।१।१६३॥
गौरव शब्द के औ को आ तथा अउ होता है ।

७. उत्सौन्दर्यादौ ॥८।१।१६०।हे०॥
सौन्दर्य आदि शब्दों के औ को उ होता है ।

८. औत ओत् ॥८।१।१५९।हे०॥
आदि औकार को ओकार हो जाता है ।

९. नाव्यावः ॥८।१।१६४।हे०॥
नौ शब्द के औ को आव आदेश होता है ।

य, तीर्थंकर = तित्थयरो शकटम् = सयढ ।[१]
व, प्रकोष्ठ = पवट्ठो, पउट्ठो ।
ह, निकष = निहसो, स्फटिक = फलिहो ।[२]
ख > क, शृङ्खलम् = सङ्कल शृङ्खला = सङ्कला ।[३]
ह, सुखम् = सुह मेखला = मेहला, शाखा = साहा ।[४]
ग > लोप, अनुराग = अणुराओ, नगरम् = णअर ।
क, नगरम् = नकरं, गगनम् = गकन (पैशाची) ।[५]

---

१. अवर्णो यश्रुति ॥८।१।१८०हे ॥
अवर्ण से पर क, ग आदि के लोप होने से यदि अ या आ शेष रहे तो यश्रुति होती है।
(जिन व्य०जनो को विच्युति हो जाती है उनके स्थान पर लघुप्रयत्नतर यकार मर्थात् हल्की ध्वनि से उच्चारित य बोला जाता है। हेमचन्द्र के मनुसार यह केवल अ और आ के बीच में आता है। मार्कण्डेय के मनुसार यश्रुति तब होती है जब एक स्वर अ या इ हो।— देखिए पि प्रा पारा नं १७९)

२ निकष-स्फटिक चिकुरे ह ॥८।१।१८६हे ॥
सूत्रोक्त शब्दो के क को ह होता है।

३ शृङ्खले ख क ॥ ।१।१ ॰ हे ॥
शृङ्खल शब्द के ख को क होता है।
(कुछ हकारयुक्त वर्णों से हकार समाप्त हो जाता है। तुलना कीजिए— पि प्रा पारा न २०६)

४. ख घ थ ध भाम् ॥८।१ १८७ हे ॥
स्वर से परे असयुक्त अनादि ख घ थ ध भ (हकारयुक्त वर्णों को) को प्राय ह होता है।
(शब्द के आरम्भ में होने पर इनका दो चार स्थान पर ही ह रूप होता है।—देखिए पि प्रा पारा नं. १८८)

५. वर्गाणां तृतीयचतुर्थयोरयुजोरनाद्योराद्यौ ॥१०।३।वर०॥
पैशाची प्राकृत में व र्गो के अनादि असंयुक्त तृतीय एव चतुर्थ व्यञ्जनों को क्रमश प्रथम और द्वितीय हो जाते हैं।
(तुलना कीजिए—पि. प्रा पारा न १९१)

म, पुंनागानि = पुंनामाइं, भागिनी = भामिणी।[1]

ल, छागः = छालो, छागी = छाली।[2]

व, दुर्भगः = दूहवो, सुभगः = सूहवो।[3]

घ > स, मेघः = मेसो, व्याघ्र = वक्सो (पैशाची)।

ह, मेघः = मेहो, जघनम् = जहणं।

च > लोप, नाराच = णाराओ, प्रचुरम् = पउरं।

ज, पिशाची = पिसाजी।

ल, पिशाचः = पिसल्लो, पिसाओ।[4]

स, खचितः = खसिओ, खइओ।

छ (अपरिवर्तित), छेदः = छेओ।[5]

ज > लोप, रजतम् = रअदं, गजः = गओ।

च, राजा = राचा (पै०), जर्जरम् = चच्चरं (चू० पै०)।

ज्ज, ऋजुः = उज्जू।[6]

---

१. पुन्नाग-भागिन्योर्गो मः ॥८।१।१९०।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दों के ग को म होता है।

२. छागे ल. ॥८।१।१९१।हे०॥
छाग शब्द के ग को ल होता है।

३. ऊत्वे दुर्भग सुभगे व. ॥८।१।१९२।हे०॥
दुर्भग, सुभग शब्दों के उ को दीर्घ होने पर ग को व होता है।

४. खचित-पिशाचयोश्च. स ल्लौ वा ॥८।१।१९३।हे०॥
खचित और पिशाच शब्द के च को विकल्प से क्रमश स तथा ल्ल होते हैं।

५. (शब्द के आरम्भ में [illegible] अपरिवर्तित बना रहता है। शब्द के मध्य में यह संस्कृत के समान ही च्छ रूप ग्रहण कर लेता है।—देखिए पि. प्रा. पारा नं २२६)

६. नीडादिषु ॥३।५२।वर०॥
नीड आदि शब्द के अनादि वर्तमान व्यञ्जन को द्वित्व होता है।
नीडादिगण के शब्द—

नीडव्याहृतमण्डूकस्रोतांसि प्रेमयौवने।
ऋजु. स्थूल तथा तैलं त्रैलोक्यं च गणो यथा॥ —कल्पलतिका

झ, जटिल = झडिलो, जडिलो।[१]

र, व्यवसृजति = वोसिरामि।[२]

ट > ड, घट = घडो, नट = नडो, भट = भडो।[३]

ढ, कैटभ = केढवो, शकट = सयढो, सटा = सढा।[४]

ल, स्फटिक = फलिहो, चपेटा = चविला, चविडा, पाटयति = फालेइ, फाडेइ।[५]

ठ > ढ, मठः = मढो, कुठार = कुढारो, पठति = पढइ।[६]

ल्ल, अङ्कोठ = अंकोल्लो, अङ्कोठतैलम् = अंकोल्लतेल्लं।[७]

ड > ट, तडाग = तटाको (पैशाची)।

ल, गरुडः = गरुलो, वडवामुखम् = वलयामुहं तडागम् = तलायं।[८]

---

१. जटिले जो झो वा ॥८।१।१९४हे०॥
जटिल शब्द के ज को विकल्प से झ होता है।

२. (सृज् धातु के ज् को र् हो जाता है।—देखिए पि प्रा पारा नं २३७)

३. टो डः ॥८।१।१९५हे०॥
स्वर से परे अनादि असंयुक्त ट को ड होता है।
(टवर्ग के असंयुक्त अनादि प्रथम तथा द्वितीय वर्ण क्रमशः तृतीय तथा चतुर्थ वर्ण हो जाते हैं।—देखिए पि प्रा पारा नं. १९०)

४ सटा शकट-कैटभे ढः ॥८।१।१९६हे०॥
सूत्रोक्त शब्दों के ट को ढ होता है।

५ (अ) स्फटिके लः ॥८।१।१९७हे०॥
स्फटिक शब्द के ट को ल होता है।
(ब) चपेटा-पाटौ वा ॥८।१।१९८हे०॥
चपेटा शब्द तथा ण्यन्त पाटि धातु के ट को विकल्प से ल होता है।

६. ठो ढः ॥८।१।१९९हे०॥
स्वर से परे असंयुक्त अनादि ठ को ढ होता है।

७. अङ्कोठे ल्लः ॥८।१।२००हे०॥
अंकोठ शब्द के ठ को ल्ल होता है।

८. डो लः ॥८।१।२०२हे०॥
स्वर से परे असंयुक्त अनादि ड को प्रायः ल होता है।

ढ (अपरिवर्तित), गाढम् = गाढं, सोढुम् = सोढुं ।[1]
ण > न, गुणेण = गुनेन, विषाणम् = विसानं (पैशाची) ।[2]
ल, वेणुः = वेलू, वेणू ।[3]
त > लोप, कृतम् = कअं, रसातलम् = रसायलं ।
द, ऋतुः = उदू, रजतम् = रअदं, संयतः = संजदो ।[4]
च, छ; तुच्छम् = चुच्छं, छुच्छं ।[5]
ट, तगरः = टगरो, तूवरः = टूवरो, त्रसरः = टसरो ।[6]
ड, प्रतिसारः = पडिसारो, प्राभृतम् = पाहुडं ।[7]

---

१. (सभी प्राकृत बोलियों में ढ अपरिवर्तित रहता है ।—देखिये पि. प्रा पारा नं २३४)
२ णो नः ॥८।४।३०६।हे०॥
पैशाची में णकार को न होता है।
३. वेणौ णो वा ॥८।१।२०३।हे०॥
वेणु शब्द के ण को विकल्प से ल होता है।
४. ऋत्वादिषु तो दः ॥२।७।वर०॥
ऋत्वादि शब्द के त को द होता है।
(वररुचि, क्रमदीश्वर तथा मार्कण्डेय के अनुसार महाराष्ट्री के भी अनेक शब्दों के त को द होता है। वे सभी शब्द ऋत्वादिगण में एकत्र किये हैं। हेमचन्द्र ने सूत्र नं. ८।१।२०९ में इस मत की आलोचना की है। बात यह है कि यह ध्वनि परिवर्तन शौरसेनी तथा मागधी में होता है, महाराष्ट्री में नहीं।—देखिए पि. प्रा. पारा नं. १८६ ।)
५. तुच्छे तश्च-छौ वा ॥८।१।२०४।हे.॥
तुच्छ शब्द के त को च तथा छ होता है।
(बाद में आने वाले तालव्यवर्ण की समानता के लिये त को तालव्य च या छ होता है।)
६. तगर-त्रसर तूवरे टः ॥८।१।२०५।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दों के त को ट होता है।
(संस्कृत के दन्त्यवर्ण प्राकृत में बहुधा मूर्धन्य बन जाते हैं।—देखिए पि. प्रा. भा. पारा. नं २१०)
७. प्रत्यादौ डः ॥८।१।२०६।हे०॥
प्रति आदि शब्द के त को ड होता है।

ए, गर्भित = गब्भिएो, अतिमुक्तकम् = अणिउँतयं।[1]
र, सप्तति = सत्तरी।[2]
ल, अतसी – अलसी, सातवाहन = सालवाहणो।
पलितम् = पलिल, पलिअ।[3]
व, पीतलम् = पीवल, पीअल।[4]
ह, वितस्ति = विहत्थी, वसति = वसही।[5]
थ > ढ, मेथि = मेढी, शिथिर = सिढिलो, प्रथम = पढमो।[6]
ध, कथयति = कधेदि, कहेदि, नाथ = णाधो, णाहो।[7]
ह, मिथुनम् = मिहुण, कथयति = कहेइ।
द > लोप, वदनम् = वअण, मदनम् = मअण, नदी = नई।
ड, दशनम् = डसण, दसणं, दोला = डोला, दोला।[8]

---

१. गर्भितातिमुक्तके ण ॥८।१।२०८।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दों के त को ए होता है।
२. सप्ततौ र ॥८।१।२१०।हे०॥
सप्तति के त को र होता है।
३. (अ) अतसी सातवाहने ल. ॥८।१।२११।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दो के त को ल होता है।
(ब) पलिते वा ॥८।१।२१२।हे०॥
पलित शब्द के त को विकल्प से ल होता है।
४ पीते वो ले वा ॥८।१।२१३।हे०॥
पीत शब्द के त को विकल्प से व होता है स्वार्थिक ल परे रहते।
५. वितस्ति-वसति-भरत-कातर-मातुलिङ्गे ह ॥८।१।२१४।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दों के त को ह होता है।
६. मेथि-शिथिर-शिथिल प्रथमे थस्य ढ ॥८।१।२१५।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दो के थ को ढ होता है।
७. थो ध ॥ ।४।२६७ हे०॥
शौरसेनी में थ को विकल्प से ध होता है।
८. दशन दष्ट-दग्ध दोला-दण्ड-दर दाह-दम्भ-दर्भ-कदन-दोहदे दो वा ड. ॥८।१।२१७॥
सूत्रोक्त शब्दों के द को विकल्प से ड होता है।

ल, ण्ह, निम्ब = लिंबो, निबो, नापित = ण्हाविओ, नाविओ।[1]

प > लोप, सुपुरुष = सुउरिसो, रिपु = रिऊ, कपि = कई।

फ, पाटयति = फाडेइ, परुष = फरुसो, परिघ = फलिहो।[2]

म, नीप = नीमो, नीवो, आपीडः = आमेलो, आवेडो।[3]

व, पापम् = पाव, दीपम् = दीव, उपमा = उवमा।[4]

र, पापर्द्धि = पारद्धी।[5]

फ > म, रेफ. = रेभो, सफलम् = सभल, शेफालिका = सेभालिआ, सेहालिआ।[6]

ह, मुक्ताफलम् = मुत्ताहल।

ब > प, बालक = पालको (चू० पै०)।

---

१. निम्ब-नापिते ल ण्ह वा ॥८।१।२३०।हे०॥
निम्ब तथा नापित शब्द के न को विकल्प से क्रमश ल तथा ण्ह होते हैं।

२. पाटि-परुष-परिघ-परिखा-पनस-पारिभद्रे फ ॥८।१।२३२।हे०॥
ण्यन्त पाटि धातु तथा परुष आदि शब्दों के प को फ होता है।

३. नीपापीडे मो वा ॥८।१।२३४।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दों के प को विकल्प से म होता है।
(प के स्थान पर नियम के अनुसार व हो जाता है तथा कभी कभी म बन जाता है।—देखिए पि प्रा पारा न. २४८।)

४. पो व ॥८।१ २३१।हे०॥
स्वर से परे असंयुक्त अनादि प को व होता है।

५ पापर्द्धौ र ॥८।१।२३५।हे०॥
पापर्द्धि शब्द के द्वितीय प को र होता है।

६. फो भ हौ ॥८।१।२३६।हे०॥
स्वर से परे असंयुक्त अनादि फ को कहीं भ, कहीं ह तथा कहीं दोनों (भ ह) होते हैं।
(वररुचि के अनुसार शब्द के भीतर तथा स्वरों के बीच में होने से फ सदा भ बन जाता है। हेमचन्द्र के अनुसार फ के स्थान पर प्राकृत में भ और ह दोनों रखे जा सकते हैं।—देखिए पि प्रा. पारा नं. १९२)

म, निसिनी = भिसिणी।[1]
म, य कबन्ध = कमन्धो कयन्धो।[2]
व, शबल = सबलो, अलावू = अलावू।[3]
भ > फ, भगवती = फकवती (चू० पै०)।
व, कैटभ = केढवो।[4]
ह, सभा = सहा, शोभते = सोहइ नभ = णह।
म > लोप, यमुना = जँउणा, चामुण्डा = चॉउण्डा।[5]
ढ, विषम = विसढो, विसमो।[6]
व, मन्मथ = वम्महो, अभिमन्यु = अहिवन्नू, अहिमन्नू।[7]
स, भ्रमर = भसलो, भमरो।[8]

---

१ बिसि या भ ॥८।१।२३८हे ॥
बिसिनी शब्द के ब को भ होता है।
२ कबन्धे म यौ ॥८।१।२३९हे०॥
कबन्ध शब्द के ब को म य होते हैं।
३ यो व ॥८।१।२३७ हे०॥
स्वर से परे असयुक्त अनादि ब को व होता है।
४ कैटभे भो व ॥८।१।२४०हे०॥
कैटभ शब्द के भ को व होता है।
५ यमुना चामुण्डा कामुकातिमुक्तके मोनुनासिकश्च ॥८।१।१७८ हे ॥
सूत्रोक्त शब्दो के म का लोप होता है। लोप होने के बाद म के स्थान पर अनुनासिक होता है।
६ विषमे मो ढो वा ॥८।१।२४१ हे०॥
विषम शब्द के म को विकल्प से ढ होता है।
७ (अ) मन्मथे व ॥८।१।२४२।हे०॥
मन्मथ शब्द के म को व होता है।
(ब) वाभिमन्यौ ॥८।१।२४३।हे ॥
अभिमन्यु शब्द के म को विकल्प से व होता है।
८ भ्रमरे सो वा ॥ ।१।२४४।हे०॥
भ्रमर शब्द के म को विकल्प से स होता है।

य > लोप, नयनम् = णअणं, वियोग = विओओ ।

ज, यश = जसो, यम = जमो, याति = जाइ ।[1]

ज्ज, उत्तरीयम्=उत्तरिज्जं, उत्तरीअं, करणीयम्=करणिज्जं, करणीअं ।[2]

त, युष्मदीयः = तुम्हकेरो, युष्मादृश = तुम्हारिसो ।[3]

ल, यष्टिः = लट्ठी ।[4]

ह, छाया = छाही, छाया ।[5]

र > ड, किरिः = किडी, भेर (दे०) = भेडो ।[6]

ण, करवीरः = कणवीरो ।[7]

ल, हरिद्रा = हलिद्दा, भ्रमरः = भसलो ।[8]

---

१. आदेर्यो जः ॥८।१।२४५हे०॥
आदि य को ज होता है ।

२. वोत्तरीयानीय-तीय कृद्ये ज्जः ॥८।१।२४८हे०॥
उत्तरीय शब्द तथा अनीय, तीय, कृत् प्रत्ययों के य को विकल्प से ज्ज होता है ।

३. युष्मद्यर्थपरे तः ॥८।१।२४६हे०॥
युष्मद् शब्द के य को त होता है ।

४. यष्ट्यां लः ॥८।१।२४७हे०॥
यष्टि के य को ल होता है । –

५. छायायां होऽकान्तौ वा ॥८।१।२४९हे०॥
अकान्ति छाया शब्द के य को विकल्प से ह होता है ।

६. किरि-भेरे रो डः ॥८।१।२५१हे०॥
सूत्रोक्त शब्दों के र को ड होता है ।

७. करवीरे णः ॥८।१।२५३हे०॥
करवीर शब्द के प्रथम र को ण होता है ।

८. हरिद्रादौ लः ॥८।१।२५४हे०॥
हरिद्रा आदि शब्दों में असंयुक्त र को ल होता है ।
भ्रमरे ससंनियोगे एव । वृत्ति ।
भ्रमर शब्द में म को स होने पर ही र को ल होता है ।

ल>ण, लाहल = णाहलो ललाटम् = णडाल, णिडाल।
    र, स्थूलम् = थोर।[2]

व>लोप, जीव = जीओ, लावण्य = लाअण्ण।
    भ, विसिनी = भिसिणी।[3]
    म, स्वप्न = सिमिणो, सिविणो, नीवी = नीमी नीवी।[4]

श>छ, शमी = छमी, शाव = छावो।[5]
    स, शब्द = सद्दो, निशा = णिसा।[6]
    ह, दश = दह, दस एकादश = एआरह, एआरस।[7]

ष>छ, षण्मुख = छमुहो।
    ण्ह, स्नुषा = सुण्हा सुसा।[8]
    स, कषाय = कसाओ, निकष = निहसो।
    ह, पाषाण = पाहाणो, पासाणो।

---

१ (अ) लाहल–लाङ्गल लाङ्गूले वादेण ॥८।१।२५६।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दो के आदि ल को विकल्प से ण होता है।
(ब) ललाटे च ॥८।१।२५७।हे०॥
ललाट शब्द के आदि ल को ण होता है।

२ स्थूले लो र ॥८।१।२५५।हे०॥
स्थूल शब्द के ल को र होता है।

३ विसिन्यो [illegible] ॥२।३८।वर०॥
विसिनी शब्द के व को भ होता है।

४. स्वप्न नीव्योर्वा ॥८।१।२५९।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दो के व को विकल्प से म होता है।

५ षट्–शमी–शाव सुधा सप्तपर्णोष्वादेश्छः ॥ ।१।२६५।हे०।
सूत्रोक्त शब्दो के आदि वर्ण को छ होता है।

६ श षो स ॥८।१।२६०।हे०॥
श तथा ष को स होता है।

७ दश-पाषाणे ह ॥८।१।२६२ हे०॥
दश एवं पाषाण शब्द के श, ष को विकल्प से ह होता है।

८. स्नुषाया ण्हो न वा ॥ ।१।२६१।हे ॥
स्नुषा शब्द के ष को विकल्प से ण्ह होता है।

स > छ, सप्तपर्णः = छत्तिवण्णो, सुधा = छुहा।

ह, दिवस. = दिवहो, दिवसो।[१]

ह > घ, सिंहः = सिंघो, सीहो ; संहारः = संघारो, संहारो।[२]

---

१. दिवसे सः ॥८।१।२६३।हे०॥
दिवस शब्द में स को विकल्प से ह होता है।

२. हो घोऽनुस्वारात् ॥८।१।२६४।हे०॥
अनुस्वार के बाद आने वाले ह को विकल्प से घ होता है।

तीसरा अध्याय

संयुक्तव्यञ्जन-परिवर्तन

१. शब्द के प्रारम्भ में संयुक्तव्यञ्जन नहीं आते हैं। किन्तु इस नियम के निम्न अपवाद हैं:—

(अ) यदि शब्द के प्रारम्भ में ण्ह, म्ह या ल्ह हो अथवा व्यञ्जन + र हो।

(आ) यदि संयुक्तव्यञ्जन समस्तपद के द्वितीयपद के आदि में हो।

उदाहरण—क्षत्रिय. = खत्तिओ, ध्वज = धओ, स्पन्दनम् = फंदणं, त्यागी = चाई।

अपवाद—(अ) स्नानम् = ण्हाण, स्मः = म्हो, ह्रसति = ल्हसइ, ह्रद = द्रहो।

आ) महिपरक्रम = महिसक्खन्धो।

२ शब्द के मध्य में आनेवाले संयुक्तव्यञ्जनों में प्राय समानीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है किन्तु निम्न संयुक्तव्यञ्जन इसके अपवाद हैं —

(अ) वह व्यञ्जन जिसमे उस व्यञ्जन के वर्ग का हकार युक्त व्यञ्जन मिला हो।

(आ) संयुक्त ध्वनियाँ ण्ह, म्ह, ल्ह।

(इ) व्यञ्जन + र।

(ई) अनुनासिक + व्यञ्जन जो कि अनुनासिक के ही वर्ग का हो।

उदाहरण—वाक्पतिराज = वप्पइराओ, उत्का = उक्का।

---

१. देखिए पि. प्रा. पारा न. २६८।

१. देखिए पि. प्रा. पारा नं २६९।

अपवाद :—(अ) मध्यम् = मज्झं, तुच्छम् = चुच्छं, छुच्छं।

(आ) कृष्णः = कण्हो, अस्मादृशः = अम्हारिसो, प्रह्लादः = पल्हाओ।

(इ) वोद्रहो (देशी शब्द) = तरुण, युवा।

(ई) मकरन्दः = मअरन्दो, मञ्जूषा = मञ्जूसा।

३. समानीकरण का नियम :—

संयुक्तव्यञ्जनों में प्राय एक व्यञ्जन दूसरे व्यञ्जन के अनुरूप हो जाता है। इसकी व्यवस्था -बलाबल की दृष्टि से होती है। समानबलवाले संयुक्तव्यञ्जनों में प्रथमव्यञ्जन द्वितीय-व्यञ्जन के अनुरूप हो जाता है। असमानबलवाले संयुक्त व्यञ्जनों मे हीनबलवाला व्यञ्जन अधिकबलवाले व्यञ्जनका रूप धारण कर लेता है।

बल की दृष्टि से व्यञ्जनों का क्रम :—

(अ) वर्ग के प्रथम ४ वर्ण

(आ) अनुनासिक वर्ण

(इ) ल, स, व, य, र (क्रमश)

३.१ व्यञ्जन + व्यञ्जन

वल्कस्कारः = वल्क्कारो, उत्पलम् = उप्पलं, प्राग्भारः = पब्भारो, उद्घातम् = उग्घातं।

---

३. देखिए Woolner's Introduction To Prakrit Page—17(33)

(प्रस्तुत अध्याय में ३·१ से ३·१२ तक व्यञ्जन पद से वर्ग के प्रथम चार वर्ण तथा अनुनासिक पद से पञ्चम वर्ण अभिप्रेत हैं)

३.१ (अ) क-ग-ट-ड-त-द-प श ष-स — ≍ क — ≍ पामुर्ध्वं लुक् ॥८।२।७७।है०॥

यदि संयुक्तव्यञ्जनों में प्रथम व्यञ्जन सूत्रोक्त व्यञ्जनों में से हो तो उसका लोप हो जाता है।

(ब) अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम् ॥८।२।८९।है०॥

पद के अनादि में [illegible] को द्वित्व होता है।

३. २ व्यञ्जन + अनुनासिक

बलहीन अनुनासिक बलयुक्त व्यञ्जन के अनुरूप हो जाता है।
अग्निः = अग्गी, युग्मम् = जुग्गं, प्रयत्नः = पयत्तो।

३. ३ व्यञ्जन + य

बलहीन य बलयुक्त व्यञ्जन के रूप में बदल जाता है।
चाणक्यः = चाणक्को, कुप्यति = कुप्पइ, अभ्यर्थनम् = अब्भत्थणं।

३. ४ दन्त्यवर्ण + य

दन्त्यवर्ण के साथ य आने पर दन्त्यवर्ण तालव्यवर्ण में बदल जाता है। तत्पश्चात् य उसके अनुरूप हो जाता है।
अत्यन्तम् = अच्चन्तं, नेपथ्यम् = णेवच्छं, अद्य = अज्ज, मध्यम् = मज्झं।

(स) द्वितीयतुर्ययोरुपरि पूर्वः ॥८।२।९०।हे०॥
यदि संयुक्तव्यञ्जन का द्वितीयव्यञ्जन वर्ग का द्वितीय या चतुर्थ व्यञ्जन हो तो प्रथमव्यञ्जन को क्रमशः द्वितीयव्यञ्जन के वर्ग का प्रथम या तृतीय व्यञ्जन हो जाता है।
(तुलना कीजिए पि. प्रा पारा नं १८९ तथा २७०)

३. २ देखिए पि. प्रा. पारा न. २७६, २७७।

३. ३ जब अन्तिम ध्वनि या स्पर्श वर्ण अथवा अनुनासिक अर्धस्वर से टकराते हैं तो, जब तक उनके बीच में अंश स्वर न आए, नियम यह है कि अर्धस्वर शब्द में मिला लिया जाता है। (पि. प्रा पारा नं, २७९)

३. ४ (अ) (१) त्यथ्यद्यां चछजाः ॥३।२७।वर०॥
त्य, थ्य, द्य को क्रमशः च छ ज होते हैं।

(२) ध्यह्योर्झः ॥३।२८।वर०॥
ध्य तथा ह्य को झ होता है।

(ब) देखिए पि. प्रा. पारा न २८०।

३.५ दन्त्यवर्ण + व

दन्त्यवर्ण के साथ व आने पर प्राय व दन्त्यवर्ण के समान हो जाता है किन्तु कभी कभी पहले दन्त्यवर्ण तालव्यवर्ण बन जाता है, तत्पश्चात् व उसके अनुरूप हो जाता है।

चत्वारि = चत्तारि, जम्बुद्वीप = जम्बुद्दीवो, ऊर्ध्वम् = उद्ध। चत्वरम् = चच्चरं, पृथ्वी = पिच्छी, विद्वान् = विज्ज बुद्ध्वा = बुज्झा।

३.६ व्यञ्जन + र, ल, व

बलहीन र, ल, व बलयुक्त व्यञ्जन में बदल जाते हैं।

विक्रम = विक्कमो, रात्रि = रत्ती, विक्लव = विक्कवो, पक्वम् = पक्कं, ध्वज = धओ।

३.७ अनुनासिक + व्यञ्जन

यदि पहला अनुनासिक द्वितीय व्यञ्जन के वर्ग का हो तो प्राय उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता है।

लाञ्छनम् = लञ्छणं, कण्ठ = कण्ठो, बन्ध = बन्धो।

३.८ अनुनासिक + अनुनासिक

यदि भिन्न वर्गों के अनुनासिक आपस में मिलें तो म के पूर्व आने वाले ङ् और ण् को अनुस्वार हो जाता है। न्म को म्म तथा म्न को ण्ण हो जाता है।

पराङ्मुख = परंमुहो, षण्मुख = छंमुहो, उन्मुख = उम्मुहो, निम्नगा = णिण्णआ।

३.५ (अ) देखिए पि प्रा पारा नं २९८, २९९

(आ) त्व थ्व द्व ध्वा च छ-ज झा क्वचित् ॥८।२।१५।हे०॥

कहीं कहीं त्व, थ्व, द्व, ध्व को क्रमश च, छ, ज, झ होते हैं।

३.६ देखिए पि. प्रा. पारा नं २८७, २९६, २९७।

३.७ देखिए पि प्रा. पारा नं. २७२।

३.८ देखिए पि प्रा पारा नं २७८।

३.९ अनुनासिक+अन्तस्थ

बलहीन अन्तस्थ बलयुक्त अनुनासिक के अनुरूप हो जाता है। हिरण्य = हिरण्ण, कन्या = कण्णा, मन्ये = मण्णे अन्वेषणम् = अण्णेसण।

३.१० र+दन्त्यवर्ण—

यदि दन्त्यवर्ण के पूर्व र आवे तो वह दन्त्यवर्ण के साथ मिल जाता है, तत्पश्चात् वे बहुधा मूर्धन्यवर्ण हो जाते हैं।

(1) चक्रवर्ती = चक्कवट्टी, अर्थ = अट्ठो, गर्दभ = गड्डहो, गद्दहो, अर्धम = अड्ढ, अढ।

३.११ श ष, स+व्यंजन

(१) श्च, श्छ > च्छ, आश्चयम् = अच्छरिअ, निश्छिद्रम् = णिच्छिड्ड।

(२ स्क ष्क > क्ख, शुष्क = सुक्ख सुक्क, पुष्करिणी = पोक्खरिणी।

(३) ष्ट, ष्ठ > ट्ठ, दृष्टि = दिट्ठी, सुष्ठु = सुट्ठु।

(४) ष्प ष्फ > प्फ, पुष्पम् = पुप्फं निष्फलम् = णिप्फल।

३.९ देखिए पि प्रा पारा न २७२।

३.१० जिस वर्णसमूह में र रेफ रूप में) व्यंजन से पहले आता हो उसमें दन्त्यवर्णों के स्थान पर बहुधा मूर्धन्यवर्ण आ जाते हैं। यह ध्वनि-परिवर्तन विशेषत अ माग में होता है। देखिए पि प्रा. पारा न २८९)

३.११ (क) (१) श्च त्स प्सां छः ॥२।२०।२२०॥

श्च, त्स प्स को छ हो जाता है।

(२) ष्टस्कयो ख ॥२।२६।४२ ॥

ष्क स्क, स्त को ख होता है।

(३) ष्टस्य ठ ॥२।१०।४र ॥

ष्ट के स्थान पर ठ होता है।

(४) ष्पस्प फ ॥२।३९।५२ ॥

ष्प को फ होता है।

(५) स्क, स्ख > क्ख, अवस्कन्दः = अवक्खन्दो, प्रस्खलन्ती = पक्खलन्ती ।

(६) स्त, स्थ > त्थ, अस्ति = अत्थि, अवस्था = अवत्था ।

(७) स्प, स्फ > प्फ, प्रतिस्पर्धीः = पडिप्फद्धी आस्फालनं = अप्फालणं ।

३. १२ श, ष, स + अनुनासिक

यदि संयुक्त व्यञ्जन में श, ष, स के बाद अनुनासिक आयें तो श, ष, स को ह हो जाता है तथा वर्णों के क्रम में परिवर्तन हो जाता है ।

ग्रीष्मः = गिम्हो, अस्मादृशः = अम्हारिसो, स्नानम् = ण्हाणं, प्रश्नः = पण्हो ।

---

(५) देखिए ३. ११ (क), (२) ।

(६) स्तस्य थः ॥३।१२।वर०॥

स्त के स्थान पर थ होता है ।

(७) स्पस्य सर्वत्र स्थितस्य ॥३।३६।वर०॥

सर्वत्र स्प को फ होता है ।

(ख) देखिए पि० प्रा० पारा नं० ३०१, ३०२, ३०३, ३०५, ३०६, ३०७ तथा ३११ ।

(ग) यदि संयुक्तव्यञ्जन में प्रथम व्यञ्जन श, ष या स हो तथा द्वितीय व्यञ्जन वर्ग के प्रथम दो वर्णों में से कोई हो तो श, ष या स द्वितीय व्यञ्जन का रूप धारण कर लेता है तथा द्वितीय व्यञ्जन हकारयुक्त हो जाता है ।

(तुलना कीजिए—Woolner's Introduction To Prakrit Page 18 (38))

३. १२ (अ) पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः ॥८।२।७४।हे०॥

पक्ष्म स्थित क्ष्म एवं श्म आदि संयुक्त व्यञ्जनों को म्ह होता है ।

(ब) सूक्ष्म-श्न-ष्ण-स्न-ह्न-ह्ण-क्ष्णां ण्हः ॥८।२।७५।हे०॥

सूत्रोक्त संयुक्तव्यञ्जनों को ण्ह होता है ।

(तुलना कीजिए पि. प्रा. पारा नं. ३१२)

३.' १३ श, ष, स + अन्तस्थ(ल को छोड़कर)

श, ष, स के बाद अन्तस्थ आने पर अन्तस्थ पूर्ववर्ती व्यञ्जन का रूप धारण कर लेता है।

अश्व = अस्सो, अवश्यम् = अवस्स, मनुष्य. = मणुस्सो, सहस्रम् = सहस्स।

४. विसर्ग + क, ख, प, फ

क, ख, प, फ के पूर्व आनेवाले विसर्ग को स हो जाता है। तत्पश्चात् पूर्वोक्त नियमों के आधार पर उसमें परिवर्तन होता है। अन्त करणम् = अन्तक्करणं, दु खम् = दुक्ख, अन्त पात: = अन्तप्पाओ।

५. ह् + न ण, ल, म, य = ण्ह, ल्ह, म्ह, य्ह (क्रमश:)

वह्नि = वण्ही पूर्वाह्ण + = पुव्वण्हो, प्रह्लाद: = पल्हाओ, ब्राह्मण = बम्हणो, गुह्यम् = गुय्हं।

६. विशिष्ट संयुक्तव्यञ्जन

(१) क्ष > क्ख, च्छ, ज्झ।

मक्षिका = मक्खिआ, मच्छिआ; लक्षणम् = लक्खणं, अक्षिम् = अच्छि, प्रक्षीणम् = पक्खीणं।

(२) क्म > प्प, ड्म > म्प।

रुक्मिणी = रुप्पिणी, कुड्मलम् = कुम्पलं।

---

३ १३ देखिए पि प्रा पारा न ३१९।

४ देखिए पि प्रा. पारा नं ३२९।

५ (अ) ह्नस्नह्लह्मष्णु न ल मा स्थितिरूर्ध्वम् ॥३।८।२।७॥

सूत्रोक्त संयुक्त व्यञ्जनों में क्रमश: न ल म पूर्व में आ जाते हैं।

(आ) ह्ये ह्योः ॥८।२।१२४हे ॥

ह्य को य्ह हो जाता है।

६ (१) क्षः खः क्वचित्तु छझौ ॥८।२।३हे०॥

क्ष को ख होता है, कहीं कहीं पर छ तथा झ भी होते हैं।

(२) ड्म क्मोः ॥८।२।५२हे०॥

ड्म, क्म को क्रमश म्प, प्प होता है।

(३) ज्ञ>ण (शब्द के प्रारम्भ में), ण्ण (शब्द के मध्य में)।
ज्ञानम् = णाण, विज्ञानम् = विण्णाण।

(४) त्म>प्प, आत्मा = अप्पा, अत्ता।

(५) त्र>हि, ह, त्थ, कुत्र = कहि, कह, कत्थ, यत्र = जहि, जह, जत्थ।

(६) प्स, त्स>च्छ, अप्सरा = अच्छरा, उत्साह = उच्छाहो।

(७) द्य, य्य, र्य>ज्ज, मद्यम् = मज्ज, शय्या = सेज्जा, भार्या = भज्जा।

(८) र्ष, ष्प>ह, बाष्प = बाहो, कार्षापण = काहावणो।

७ स्वरभक्ति

संयुक्तव्यञ्जन में यदि एक व्यञ्जन य, र, ल, अथवा अनुनासिक हो तो उन्हें स्वर के द्वारा विभक्त कर दिया

---

(३) म्नज्ञोर्णः ॥८।२।४२हे०॥
सूत्रोक्त संयुक्तव्यञ्जनों को ण हो जाता है।
(देखिए पि० प्रा० पा० नं० २७६)

(४) भस्मात्मनोः पो वा ॥ ।२।५१।हे०॥
सूत्रोक्त शब्दों के संयुक्तव्यञ्जनों को विकल्प से प होता है।

(५) त्रपो हि ह त्थाः ॥ ।२।१६१।हे०॥
त्रप प्रत्यय को हि, ह, त्थ होते हैं।

(६) ह्रस्वात् थ्य श्च त्स प्सामनिश्चले ॥ ।२।२१।हे०॥
ह्रस्व से परे थ्य श्च त्स प्स को छ होता है किंतु निश्चल में नहीं होता है।

(७) द्य-य्य-र्यां जः ॥८।२।२४।हे०॥
द्य, य्य, र्य को ज होता है।

(८) (अ) बाष्पेऽश्रुणि हः ॥३।३८।वर०॥
अश्रुवाचक बाष्प शब्द के ष्प को ह होता है।
(ब) कार्षापणे ॥३।३९।वर०॥
कार्षापण के र्ष को ह होता है।

७ (अ) क्लिष्टश्लिष्टरत्नक्रियाशार्ङ्गेषु तत्स्वरवत्पूर्वस्य ॥३।६०।वर०॥
सूत्रोक्त शब्दों में संयुक्तव्यञ्जन, तद्गत स्वर से विभक्त होता है।

चौथा अध्याय

सन्धि-प्रकरण

प्राकृत में सन्धि-व्यवस्था वैकल्पिक है, नित्य नहीं। सन्धि के दो भेद हैं—१. स्वर-सन्धि २ व्यञ्जन-सन्धि।

स्वर-सन्धि

१. अकार, इकार या उकार के बाद सवर्ण-स्वर आने पर उनके स्थान पर सवर्ण दीर्घ हो जाता है।

मगह+अहिवई = मगहाहिवई, मगह अहिवई (मगधाधिपति)।
विसम + आयवो = विसमायवो, विसम आयवो (विषमातप.)।
मुणि + ईसरो = मुणीसरो, मुणि ईसरो (मुनीश्वर)।
भाणु + उवज्झायो = भाणूवज्झायो, भाणु उवज्झायो (भानूपाध्याय)।

२. समस्तपद में प्रथमपद के अन्त में आनेवाले दीर्घ स्वर को कहीं नित्यरूप से तथा कहीं विकल्प से ह्रस्व होता है, तथा ह्रस्व स्वर को दीर्घ।

अन्त + वेई = अन्ता वेई, (अन्तर्वेदि) सत्त + वीसा = सत्तावीसा, (सप्तविंशति) पई हरं, पइ हरं (पतिगृहम्)।

३. यदि अ या आ के बाद सरलव्यञ्जन से पूर्ववर्ती इकार या उकार हो तो उन्हें ए या ओ हो जाता है।

वास + इसी = वासेसी, वास इसी (व्यासर्षि), दिण + ईसो = दिणेसो, दिण ईसो (दिनेश), गूढ + उअर = गूढोअर,

---

१. देखिए पि प्रा. पारा नं १४८।

२. दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ ॥८।१।४॥है०॥
समस्तपद में स्वरों को दीर्घ ह्रस्व बहुलता से होते हैं।

३. देखिए पि. प्रा. पारा नं. १४९।

गूढ उअरं (गूढोदरम्), सास + ऊसासा = सासोसासा, सास ऊसासा (श्वासोच्छ्वासः), रामा + इअरो = रामेअरो, रामा इअरो (रामेश्वरः)।

४. यदि अ या आ के बाद संयुक्तव्यञ्जन से पूर्ववर्ती इकार या उकार हो, तो उनको ए या ओ न होकर अ या आ का लोप हो जाता है।

गज + इंदो = गइंदो (गजेन्द्रः), कण्ण + उप्पलं = कण्णुप्पलं (कर्णोत्पलम्), महा + ऊसवो = महूसवो (महोत्सवः)।

५. यदि प्रथमपद के अन्त में अ हो तथा द्वितीयपद के आरम्भ में असमान उद्वृत्तस्वर हो तो कहीं-कहीं उनमें से अ का लोप हो जाता है।

राअ + उलं = राउलं, राअउलं, (राजकुलम्) वाअ + उत्तो = वाउत्तो, वाअउत्तो (वातपुत्रः)।

६ यदि मौलिक या उद्वृत्त अ या आ के बाद मूल ए या ओ आवे तो अ या आ का लोप हो जाता है।

गाम + एणी = गामेणी (देशीशब्द), उदअ + ओल्लं = उदओल्लं, (उदकार्द्रम्), मट्टिआ + ओलित्तं = मट्टिओलित्तं (मृत्तिकावलिप्तम्)।

---

४ देखिए पि. प्रा. पारा नं १९८।
तुलना कीजिए—
लुक् ॥८।१।१०॥ हे०॥
स्वर का स्वर परे रहते प्रायः लोप होता है।

५. देखिए पि. प्रा. पारा नं १६०।
उद्वृत्त स्वर—
व्यञ्जनसंपृक्तः स्वरो व्यञ्जने लुप्ते योऽवशिष्यते स उद्वृत्त इहोच्यते—
हे० सूत्र ८।१।८ की वृत्ति।

६. देखिए पि. प्रा. पारा नं. १६३।

स्वरसन्धि निषेध

७ इ, ई और उ ऊ के बाद कोई भी विजातीय स्वर आवे तो उनमें सन्धि नहीं होती है।

वि + अ = विअ (द्व), सु+अलंकियं = सुअलंकियं (स्वलङ्कृतम्). वहु + अवऊढो = वहुअवऊढो (वधूपगूढ)।

८. ए तथा ओ के बाद स्वरवर्ण होने पर उनमें सन्धि नहीं होती है।

वणे+अडइ = वणे अडइ (वनेऽटति), अहो+अच्छरिअ = अहो अच्छरिअ (अहो-आश्चर्यम), देवीए + एत्थ = देवीए एत्थ (देव्या अत्र), एओ+एत्थ = एओ एत्थ (एकोऽत्र)।

९. स्वर के बाद उद्वृत्त स्वर होने पर सन्धि नहीं होती है।

निसा+अरो = निसाअरो (निशाचर), रयणी + अरो = रयणीअरो (रजनीचर)।

१०. क्रियापद के स्वर के बाद स्वर आने पर सन्धि नहीं होती है।

होइ + इह = होइ इह (भवतीह)।

अव्ययस्वर सन्धि

११. पद के बाद आने वाले अपि शब्द के अ का विकल्प से लोप हो जाता है। अवशिष्ट पि यदि स्वर से परे हो तो उसे वि हो जाता है।

केण + अपि = केण वि, केणावि (केनापि)।

किं + अपि = किं पि, किमवि (किमपि)।

---

७. न युवर्णस्यास्वे ॥८।१।६।हे ॥
इवर्ण उवर्ण से असमान स्वर परे रहते संधि नहीं होती है।

८ एदोतो स्वरे ॥८।१।७।हे०॥
एकार ओकार से परे स्वर होन पर संधि नहीं होती है।

९. स्वरस्योद्वृत्ते ॥८।१।८।हे ॥
स्वर से परे उद्वृत्त स्वर होन पर संधि नहीं होती है।

१० त्यादे ॥ ।१।९।हे०॥
तिप आदि के स्वर से परे स्वर होने पर संधि नहीं होती है।

११ पदादपेर्वा ॥८।१।४१।हे०॥
पद से परे अपि शब्द के अ का विकल्प से लोप होता है।
(ध्वनिबल की हीनता के प्रभाव से अव्यय बहुधा आरम्भ के स्वर का लोप कर देते हैं। स्वर के बाद अपि का शेष पि वि म परिणत हो जाता है। पि प्रा पारा म १३९)।

१२. पद के बाद आने वाले इति के आदि इ का लोप हो जाता है तथा अवशिष्ट ति यदि स्वर से परे हो तो उसे त्ति हो जाता है।

किं + इति = किं ति (किमिति), न जुत्तं + इति = न जुत्तं ति (न युक्तमिति), तहा + इति = तह त्ति (तथेति)।

१३ त्यदादि से परे अव्यय या अव्यय से परे त्यदादि होने पर द्वितीय पद के आदिस्वर का विकल्प से लोप होता है।

अम्हे + एत्थ = अम्हेत्थ, अम्हे एत्थ (वयमत्र)।
जइ + इमा = जइमा, जइ इमा (यदीयम्)।

व्यञ्जनसन्धि

१. संस्कृत अः को ओ हो जाता है।

अग्रत = अग्गओ, पुरतः = पुरओ, पुनः = पुणो।

२. पद के अन्त में आनेवाले म् को अनुस्वार हो जाता है किन्तु म् के बाद स्वर आने पर म् को अनुस्वार विकल्प से होता है।

गिरिम् = गिरिं, जलम् = जलं, फलम् = फलं।
उसभम् + अजिअ = उसभं अजिअं, उसभमजिअं (ऋषभमजितम्) ; यम् + आहु = यं आहु यमाहु (यमाहु)।

---

१२. इतेः स्वरात् तश्च द्विः ॥८।१।४२ हे०॥
पद से परे इति के इ का लोप होता है। तथा स्वर से परे तकार को द्वित्व होता है।

१३. त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लुक् ॥८।१।४०।हे०॥
त्यदादि या अव्यय से परे अव्यय या त्यदादि होने पर अव्यय या त्यदादि के आदि स्वर का विकल्प से लोप होता है।

१ मौलिक अर से निकला अ सभी प्राकृत बोलियो में अधिकाश स्थलों पर ओ बन जाता है। देखिए पि प्रा पारा न० ३४२।

२. (अ) मोनुस्वारः ॥८।१।२३॥हे०॥
अन्त्य मकार को अनुस्वार हो जाता है।
(ब) वा स्वरे मश्च ॥८।१।२४।हे०॥
स्वर परे रहते अन्त्य मकार को विकल्प से अनुस्वार होता है।

३. हलन्त अन्त्यव्यञ्जन को भी बहुधा मकार होकर अनुस्वार हो जाता है।

साक्षात् = सक्खं, यत् = जं, तत् = तं।

४. ङ्, ञ्, ण्, न् को व्यञ्जन परे रहते अनुस्वार हो जाता है।

पराङ्मुखः = परंमुहो, कञ्चुकः = कंचुओ, षण्मुखः = छंमुहो, सन्ध्या = संझा।

५. अनुस्वार के बाद कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग के अक्षर होने पर अनुस्वार को विकल्प से क्रमशः ङ्, ञ्, ण, न्, एवं म् होते हैं।

पं+को = पङ्को, पंको, लं+छणं = लञ्छणं, लंछणं,
सं+ढो = सण्ढो, संढो; चं + दो = चन्दो, चंदो;
आरं+भो = आरम्भो, आरंभो।

६. वक्रादि शब्दों के प्रथम, द्वितीय या तृतीय स्वर के अन्त में अनुस्वार आगम के रूप में होता है।

वक्रम् = वंकं, मनस्वी = मणंसी, उपरि = अवरि (उवरिं)।

---

३. बहुलाधिकाराद् अन्यस्यापि व्यञ्जनस्य मकारः ॥८।१।२४।हे०॥ सूत्र की वृत्ति ॥

४. ङ-ञ-ण नो व्यञ्जने ॥८।१।२५।हे०॥
ङ, ञ, ण, न—इनके स्थान पर व्यञ्जन परे रहते अनुस्वार होता है।
(तुलना कीजिए पि प्रा पारा नं २७५)

५. वर्गेऽन्त्यो वा ॥८।१।३०।हे०॥
वर्ग के वर्ण परे रहते अनुस्वार को उसी वर्ग का अन्तिम वर्ण विकल्प से हो जाता है।

६. वक्रादावन्तः ॥८।१।२६।हे०॥
वक्रादि शब्दों में प्रयोगानुसार प्रथम, द्वितीय या तृतीय स्वरों पर आगम के रूप में अनुस्वार होता है।

७. क्त्वा तथा स्यादि प्रत्ययों के ण तथा सु के आगे विकल्प से अनुस्वार का आगम होता है।

कृत्वा = काऊण, काऊग, कालेन = कालेणं, कालेण, जिनानाम् = जिणाण, जिगाण , वीरेषु = वीरेसु, वीरेसु।

८ विंशति आदि शब्दों के अनुस्वार का लोप होता है।

विंशति = वीसा, त्रिंशत् = तीसा।

९. मांस आदि शब्दों के अनुस्वार का विकल्प से लोप होता है।

मांसम् = मासं, मसं सिंह = सीहो, सिंघो।

१०. जब स्वरादिपदों की द्विरुक्ति हो तो उनके बीच में विकल्प से म् का आगम होता है।

एकैकम् = एकमेक, अङ्गे अङ्गे = अङ्गमङ्गम्मि, पद्दे एकेकमित्यादि।

---

७ क्त्वा स्यादेर्णस्वोर्वा ॥ ।१।२७।हे०॥

क्त्वा तथा स्यादि के ण तथा सु विकल्प से अनुस्वारान्त होते हैं।

८ त्रिंशत्यादेर्लुक् ॥८।१।२८।हे०॥

९ मांसादेर्वा ॥८।१।२९।हे ॥

मांसादि शब्दों के अनुस्वार का विकल्प से लोप होता है।

१०. वीप्स्यात्स्यादेर्वीप्स्ये स्वरे मो वा ॥८।३।१।हे ॥

वीप्सार्थक पद से परे स्यादि (स्वादि) प्रत्यय के स्थान पर स्वरादि वीप्सार्थक पद परे रहते विकल्प से म् होता है।

पाँचवाँ अध्याय

अव्यय

प्राय प्राकृत-अव्यय संस्कृत अव्यय से स्वर-व्यञ्जन परिवर्तन द्वारा बनते हैं। जैसे अति = अइ, अन्यथा = अण्णहा, सदा = सइ। प्रमुख प्राकृत अव्ययों की सूची सूचक अर्थों के साथ इस प्रकार है :—

अइ (अयि)—सम्भावना, आमन्त्रण
" (अति)—सामर्थ्य, अतिशय
अण (अन्)—निषेध, प्रतिषेध
अप्पणो (आत्मन)—स्वय
अम्मो (?)—आश्चर्य
अरे (अरे)—सम्भाषण, रतिकलह
अलाहि (अलहि)—निवारण, पर्याप्त
अवि (अपि)—प्रश्न, अवधारण, समुच्चय, सम्भावना, विलाप
अव्वो—सूचना, दुःख, सम्भाषण, अपराध, विस्मय, आनन्द, भय, खेद, विषाद, पश्चाताप
आम (ओम्)—स्वीकृति प्रकाशक
इ (इ)—पादपूरक
इर (किल)—सम्भावना, निश्चय, हेतु, वार्ताप्रसिद्ध अर्थ, अरुचि, असत्य, सन्देह
इहरा (इतरथा)—अन्यथा
उअ (उत)—विकल्प, वितर्क, प्रश्न, समुच्चय, अतिशय, देखो
उअ (दे०)—सरल ऋजु
ऊ (दे०)—गर्हा, आक्षेप (प्रस्तुत वाक्य के विपरीत अर्थ की आशंका से उसे उलटना) विस्मय, सूचना
एक्कसरिअ (दे०)—शीघ्र, तुरन्त
ओ (ओ)—वितर्क, प्रकोप, सूचना, पश्चाताप, सम्बोधन, पादपूरक
किर (किल)—इर के समान
किणो (किमिति)—क्यों
खु (खलु)—निश्चय, सन्देह, वितर्क, विस्मय, सम्भावना।
चिअ (एव)—अवधारण
चेअ (एव)—अवधारण
च (एव)—अवधारण
जाहे (यदा)—जिस समय
जे—पादपूरक, अवधारण
जेण (येन)—लक्षणार्थक
णइ—निश्चय, निषेध
णवर, णवर—केवल, अनन्तर
णवरं (न परम्)—विशेष
णवरि, णवरिअ (दे०)—केवल, अनन्तर

णवि—वैपरीत्य, निषेध
णाइं (नैव)—प्रतिषेध
तं (तत्)—कारण, वाक्य उपन्यास
ताहे (तदा)—उस समय
तेण (तेन)—लक्षण सूचक
थू—निन्दा, तिरस्कार
दर (दे०)—अर्ध, आधाः ईषत्
दु (दुर्)—अभाव, दुष्टता, निन्दा
दे—संमुखीकरण, सखी को आमन्त्रण
पाडिक्कं } (प्रत्येक)—हर एक
पाडिएक्कं }
पिव (अपि+इव)—सादृश्य
पुणरुत्तं—बारम्बार, कृतकरण
बले—निश्चय, निर्धारण
मणे } (मन्ये)—विमर्श
मण्णे }
माइं (माऽति)—नहीं
मामि - सखी के आमन्त्रण में
मिव इव
मोरउल्ला—व्यर्थ, मुधा
र—पादपूरक
रे (रे)—परिहास, रतिकलह, सम्भाषण, आक्षेप, तिरस्कार
व—इव
वणे—निश्चय, विकल्प, अनुकम्पा, सम्भावना
विअ (इव, एव)—इव, अवधारण
विव—इव
वेअ (एव)—अवधारण
वेव्व (दे०)—आमन्त्रण
वेव्वे (दे०)—भय, वारण, विषाद, आमन्त्रण
व्व—इव
सू—निन्दासूचक
हरे (अरे)—आक्षेप, सम्भाषण, रतिकलह
हला (हला)—सखि के आमन्त्रण में
हले (हले)— " "
हद्धि (हा धिक्)—खेद, अनुताप
हन्द—'ग्रहण करो' अर्थ में
हन्दि— " विषाद, विकल्प, पश्चात्ताप, निश्चय, सत्य संबोधन, उपदर्शन
हिर—किल
हु (खलु)—निश्चय, वितर्क, संशय, संभावना, विस्मय किन्तु, अपि, वाक्य की शोभा।
हुं (हुम्)—दान, प्रश्न, निवारण, निर्धारण, स्वीकार, हुंकार, अनादर।

छठवाँ अध्याय

शब्दरूप

प्राकृत में शब्द रूपों की प्रमुख विशेषताएँ[1]—

(१) प्राकृत में व्यञ्जनान्तशब्द नहीं होते हैं। वे अन्तिम व्यञ्जन के लुप्त होने पर उससे पूर्व आने वाले स्वर की रूपावली में सम्मिलित कर लिए जाते हैं। जैसे राजन् = राय, प्रेमन् = पेम्म।

(२) लिंग की सर्वत्र रक्षा नहीं की गई है। कुछ अश तक लिंग परिवर्तन शब्द के अन्तिम वर्ण पर निर्भर होता है। जैसे तम (न०) = तमो (पुं.)।

(३) संस्कृत की भाँति तीन वचन न होकर दो ही होते हैं, द्विवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग होता है। जैसे वृक्षौ = वच्छा।

(४) चतुर्थी विभक्ति का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है अपितु उसका अन्तर्भाव षष्ठी विभक्ति में होता है।[2] जैसे—दारकाय = दारअस्स।

अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

विभक्तिप्रत्यय-परिवर्तन

विभक्ति	एकवचन		बहुवचन	
	संस्कृत	प्राकृत	संस्कृत	प्राकृत
प्रथमा	सि (सु)	डो (ओ)[3]	जस्	लोप[4]

---

१. देखिए पि प्रा. पारा नं. ३६६, ३६६, ३६० ।

२. चतुर्थ्या षष्ठी ॥८।३।१३१ हे०॥
चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी होती है।

३. अत सेर्डो ॥८।३।२।हे०॥
अकारान्त शब्द से परे सि (सु) आदि प्रत्यय के सि (सु) को डो (ओ) होता है।

४. जस्-शसोर्लुक् ॥८।३।४।हे०॥
अकारान्त शब्द से परे जस् तथा शस् का लोप होता है।

द्वितीया	अम्	म्[1]	शस्	लोप
तृतीया	टा	ण, णं[2]	भिस्	हि, हिँ, हिं[3]
चतुर्थी	—	—	—	—
पञ्चमी	ङसि	त्तो,दो(ओ),दु(उ) हि,हिन्तो,लोप[4]	भ्यस्	त्तो,दो(ओ),दु(उ) हि,हिन्तो,सुन्तो[5]
षष्ठी	ङस्	स्स[6]	आम्	ण, णं
सप्तमी	ङि	ङे(ए), म्मि[7]	सुप्	सु, सुं
सम्बोधन	सु	ओ, लोप[8]	जस्	लोप[9]

१. अमोऽस्य ॥८।३।५।हे०॥
अ से परे अम् के अकार का लोप होता है।
२. टा-आमोर्णः ॥८।३।६।हे०॥
अकारान्त शब्द से परे टा तथा षष्ठी के बहुवचन के आम् को ण होता है।
(ण के ऊपर विकल्प से अनुस्वार के लिए देखिए व्यञ्जन सन्धि ७)
३. भिसो हि हिँ हिं॥८।३।७।हे०॥
अ से परे भिस् के स्थान पर केवल, सानुनासिक तथा सानुस्वार हि होता है
४. ङसेस् त्तो-दो दु-हि-हिन्तो-लुकः । ८।३।८।हे०॥
अ से परे ङसि को त्तो, दो, दु, हि, हिन्तो, लोप ये ६ आदेश होते हैं।
(दो तथा दु में दकार ग्रहण भाषान्तर (शौरसेनी, मागधी) के उपयोग के लिए किया गया है। हे० सूत्र ८।३।८ की वृत्ति।)
५. भ्यसस् त्तो-दो दु-हि हिन्तो सुन्तो ॥८।३।९।हे०॥
अ से परे भ्यस् के स्थान में त्तो, दो, दु, हि, हिन्तो, सुन्तो ये आदेश होते हैं।
६. ङसः स्स ॥८।३।१०।हे०॥
अ से परे ङस् के स्थान पर स्स होता है।
७. डे म्मि ङेः ॥८।३।११।हे०॥
अ से परे ङि को डित् एकार तथा म्मि होता है।
८. देखिए पि. प्रा. पारा नं ३६६ (ब)।
९. देखिए पि. प्रा. पारा नं. ३७२ ।

वच्छ (वृक्ष) शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	वच्छो	वच्छा[1]
द्वितीया	वच्छं	वच्छे,[2] वच्छा
तृतीया	वच्छेण, वच्छेणं	वच्छेहि, वच्छेहिँ, वच्छेहिं[3]
चतुर्थी	——	——
पञ्चमी	वच्छा, वच्छत्तो,[4] वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि, वच्छाहिन्तो	वच्छत्तो, वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि,[5] वच्छेहि, वच्छाहिन्तो, वच्छेहिन्तो, वच्छासुन्तो, वच्छेसुन्तो
षष्ठी	वच्छस्स	वच्छाण, वच्छाणं
सप्तमी	वच्छे, वच्छम्मि	वच्छेसु, वच्छेसुं
सम्बोधन	वच्छ, वच्छा, वच्छो	वच्छा

---

१. जस् शस ङसि त्तो दो द्वामि दीर्घः ॥८।३।१२हे०॥
सूत्रोक्त प्रत्ययो के परे रहते अ को दीर्घ होता है।

२. टाण-शस्येत् ॥८।३।१४हे०॥
टा के आदेश ण तथा शस् परे रहते अ को एकार होता है।

३ भिस्भ्यस्सुपि ॥८।३।१५हे०॥
भिस् , भ्यस् , सुप् परे रहते अ को ए होता है।

४. दीर्घ स्वर को संयुक्तव्यञ्जन से पूर्ववर्ती होने से ह्रस्व—देखिए पृ० २ टि० ७

५. भ्यसि वा ॥८।३।१३हे०॥
भ्यस् को होनेवाले आदेश परे रहते अ को विकल्प से दीर्घ होता है।

इकारान्त एवं उकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

विभक्तिप्रत्यय परिवर्तन

विभक्ति	एकवचन संस्कृत	एकवचन प्राकृत	बहुवचन संस्कृत	बहुवचन प्राकृत
प्रथमा	सि(सु)	लोप	जस्	अउ,अओ[1] णो[2] लोप, अवो[3] (केवल उकारान्त शब्द के लिए)
द्वितीया	अम्	म्	शस्	णो, लोप
तृतीया	टा	णा[4]	भिस्	हि, हिँ, हिं
पञ्चमी	ङसि	णो,[5] तो, दो (ओ) दु(उ)हिन्तो	भ्यस्	तो, दो(ओ), दु(उ), हिन्तो, सुन्तो
षष्ठी	ङस्	णो, स्स	आम्	ण, णं
सप्तमी	ङि	म्मि	सुप्	सु, सुं
सम्बोधन	सि(सु)	लोप	जस्	अउ, अओ, णो, लोप

---

१ पुंसि जसो डउ डओ वा ॥८ ३।२०।हे०॥
इ उ से परे जस को पु० में डित् अउ तथा अओ आदेश होते हैं।

२ जस-शसोर्णो वा ॥८।३।२२ हे०॥
इ, उ से परे जस शस् को पु० में विकल्प से णो आदेश होता है।

३ वोतो डवो ॥ ३ २१।हे ॥
उदन्त से परे जस को पु० मे विकल्प से डित् अवो आदेश होता है।

४ टो णा ॥८ ३।२४ हे० ।
पु तथा नपु० में इ उ से परे टा को णा होता है।

५ ङसि ङसो पुंक्लीवे वा ॥८।३।२३ हे०॥
पु० तथा नपुं० में वर्तमान इ, उ से परे ङसि ङस् को विकल्प से णो होता है।

गिरि शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	गिरी[1]	गिरी, गिरिणो गिरउ,-ओ
द्वितीया	गिरिं	गिरी,[2] गिरिणो
तृतीया	गिरिणा	गिरीहि,-हिँ, हिं[3]
पञ्चमी	गिरिणो, त्तो, गिरीओ,-उ, हि-तो	गिरित्तो, गिरीउ,-ओ, हिन्तो,-सुन्तो
षष्ठी	गिरिणो,-स्स	गिरीण,-णं
सप्तमी	गिरिम्मि	गिरीसु,-सु
सम्बोधन	गिरि, गिरी[4]	गिरी, गिरिणो, गिरउ,-ओ

तरु शब्द के रूप

प०	तरू	तरू, तरुणो, तरउ,-ओ,-वो
द्वि०	तरुं	तरू तरुणो
तृ०	तरुणा	तरूहि,-हिँ, हिं
प०	तरुणो,-त्तो, तरूउ, ओ,-हिन्तो	तरुत्तो, तरूउ,-ओ, हिन्तो,-सुन्तो
ष०	तरुणो,-स्स	तरूण, ण
स०	तरुम्मि	तरूसु,-सुं
सम्बो०	तरु, तरू	तरू, तरुणो, तरउ,-ओ,-वो

---

१ अक्लीबे सौ ॥८।३।१९।है ॥
नपु० को छोड़कर सि (सु) परे रहते इ, उ को दीर्घ होता है।

२. लुप्ते शसि ॥८।३।१८।है ॥
शस् का लोप होने पर इ, उ को दीर्घ होता है।

३. इदुतो दीर्घः ॥८।३।१६ है०॥
इकार, उकार को भिस , भ्यस , सुप् परे रहते दीर्घ होता है।

४. ईदूतोर्ह्रस्व ॥८।३।४२।है०॥
सम्बोधन में ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्द को ह्रस्व होता है।
उदाहरण—हे गामणि, हे वहु।

ऋकारान्त पुल्लिँङ्ग शब्द

ऋकारान्त पुल्लिंग शब्द दो भागों में विभक्त किए जाते हैं—१. विशेष्यवाचक २ विशेपणवाचक। प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति के एकवचन को छोड़कर दोनों प्रकार के शब्दों के अन्तिम ऋ को विकल्प से उ हो जाता है तथा उनकी रूपावली तरु शब्द की भांति होती है।[1] विकल्पाभाव में विशेष्यवाचक तथा विशेपणवाचक शब्दों के अन्तिम ऋ को क्रमशः अर तथा आर हो जाता है तथा उनकी रूपावली वच्छ शब्द के समान होती है।[2]

पिउ, पिअर (पितृ) शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्र०	पिआ[3], पिअरो	पिअरा, पिऊ, पिउणो, पिअउ,-ओ,-वो
द्वि०	पिअरं	पिअरा,-रे, पिउणो, पिऊ
तृ०	पिअरेण,-णं, पिउणा	पिअरेहि,-हिँ,-हिं, पिऊहि,-हिँ,-हिं
प०	पिअरत्तो,पिअरा,-उ,-ओ,-हि,-हिन्तो,पिउत्तो,पिउणो, पिऊउ -ओ,-हिन्तो	पिअरत्तो, पिअराउ,-ओ,-हि,-हिन्तो,सुन्तो, पिअरेहि,-हिन्तो,-सुन्तो, पिउत्तो,पिऊउ -ओ,-हिन्तो,-सुन्तो
प०	पिअरस्स, पिउणो,-स्स	पिअराण,-णं, पिऊण -णं

१. ऋतामुदस्यमौसु वा ॥८।३।४५।हे०॥
सि (सु), अम्, औ को छोड़कर सि (सु) आदि प्रत्यय परे रहते ऋकारान्त शब्दो को विकल्प से उकारान्त हो जाता है।

२. (अ) आरः स्यादौ ॥८।३।४५।हे०॥
सि (सु) आदि परे रहते ऋ को आर आदेश होता है।
(ब) नाम्न्यरः ८।३।४७।हे०॥
संज्ञावाची ऋदन्त शब्दों के ऋ को सि (सु) आदि परे रहते अर आदेश होता है।

३. आ सौ न वा ।.८।३।४८।हे०॥
ऋदन्त को सि (सु) परे रहते विकल्प से आ होता है।

स० पिअरे,-पिअरम्मि, पिउम्मि पिअरेसु,-सुं, पिऊसु,-सु
सम्बो० पिअ[1], पिअरं पिअरा, पिऊ, पिउणो, पिअउ,-ओ,-वो

दाउ, दायार (दातृ) शब्द के रूप तरु तथा पिअर शब्द के समान होते हैं। प्रथमा विभक्ति के एकवचन में पिआ की भांति दाया तथा सम्बोधन के एकवचन में पिअ की भांति दाय रूप होते हैं।

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

विभक्ति प्रत्यय परिवर्तन

विभक्ति	एकवचन		बहुवचन	
	संस्कृत	प्राकृत	संस्कृत	प्राकृत
प्र०	सि (सु)	लोप	जस्	उ, ओ;[2] लोप
द्वि०	अम्	म्	शस्	उ, ओ, लोप
तृ०	टा	अ, इ, ए;[3]	भिस्	हि, हिँ, हिं
पं०	ङसि	अ,इ,ए,त्तो,ओ उ, हिन्तो	भ्यस्	त्तो,ओ,उ,हिन्तो,सुन्तो

---

१. ऋतोद्वा। ८।३।३९।हे०।
सम्बोधन में सि (सु) परे रहते ऋकारान्त शब्द के अन्त स्वर को अ होता है।

२ स्त्रियामुदोतौ वा। ८।३।२७।हे०॥
स्त्रीलिंग में वर्तमान संज्ञा शब्दों से परे जस् शस् के स्थान पर विकल्प से उ एवं ओ तथा पूर्व स्वर को दीर्घ हो जाता है।

३. (अ) टा-ङस्-ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः। ८।३।२९।हे०॥
स्त्रीलिंग में शब्द से परे टा, ङस्, ङि के स्थान पर अ, आ, इ तथा ए होते हैं। ङसि को ये आदेश होने के साथ पूर्व स्वर को दीर्घ विकल्प से होता है।

(ब) नात आत्। ८।३।३० हे०॥
स्त्रीलिंग में वर्तमान आकारान्त शब्द से परे टा, ङस्, ङि, ङसि को आ आदेश नहीं होता है।

प०	ङस्	अ, इ, ए	आम्	ण, णं
स०	ङि	अ, इ, ए	सुप्	सु, सुं
सम्बो०	सि (सु)	लोप	जस्	उ, ओ, लोप

माला शब्द के रूप

विभक्ति	एक वचन	बहुवचन
प्र०	माला	माला, मालाउ,-ओ
द्वि०	मालं[1]	" " "
तृ०	मालाअ,-इ-ए	मालाहि, हिँ,-हिं
पं०	मालत्तो, मालाअ,-इ, ए,-ओ,-उ, हिन्तो	मालत्तो, मालाउ,-ओ,-हिन्तो,-सुन्तो
ष०	मालाअ,-इ-ए	मालाण,-णं
स०	" " "	मालासु सुं
सम्बो०	माले[2], माला	माला,-उ,-ओ

ईकारान्त, उकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप बुद्धि शब्द की भाँति होते हैं। किन्तु ईकारान्त शब्दों के प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति के सि (सु), जस् तथा शस् के स्थान पर विकल्प से आ भी होता है, जैसे—गोरीआ।[1]

ऋकारान्त स्त्रीलिंग शब्द

मातृ आदि स्त्रीलिंग शब्दों के ऋकार को सि (सु) आदि परे रहते आ आदेश होता है। तत्पश्चात् रूपावली माला शब्द के समान होती है। माआ का अर्थ माता होता है। देवी के अर्थ में मातृ शब्द के ऋ को अरा आदेश होता है। माअरा = देवी।

नपुंसकलिंग शब्द

विभक्तिप्रत्यय परिवर्तन

विभक्ति	एकवचन		बहुवचन	
	संस्कृत	प्राकृत	संस्कृत	प्राकृत
प्र०	सि (सु)	म्[2]	जस्	णि, इँ, इ[3]
द्वि०	अम्	म्	शस्	" "
सम्बो०	सि (सु)	लोप[4]	जस्	" "

शेष विभक्तियों में प्रत्यय-परिवर्तन पु० शब्द के प्रत्यय-परिवर्तन की भाँति होते हैं।

---

१. ईत सेर्वा वा ॥८।३।२८।हे०॥
ईकारान्त (स्त्री०) शब्द से परे सि (सु) जस तथा शस् को विकल्प से आ आदेश होता है।

२. क्लीवे स्वरान्म् से ॥८।३।२५।हे०॥
नपुं० स्वरान्त शब्द से परे सि (सु) को म् होता है।

३ जस् शस इँ इ-णयः सप्राग्दीर्घाः ॥८।३।२६।हे०॥
नपुं० शब्द से परे जस तथा शस् को इँ, इ तथा णि आदेश होते हैं तथा उससे पूर्व स्वर को दीर्घ होता है।

४. नामन्त्र्यात्सौ म ॥८।३।३७।हे०॥
नपुं० में सम्बोधन अर्थ में सि (सु) विभक्ति प्रत्यय को म नहीं होता है।

वण (वन) शब्द के रूप

विभक्ति	एक वचन	बहुवचन
प्र०	वणं	वणाणि, वणाइँ, वणाइं
द्वि०	"	" " "
सम्बो०	वण	" " "

शेष रूप वच्छ शब्द के समान होते हैं।

दहि (दधि) शब्द के रूप

प्र०	दहिं	दहीणि इँ, इं
द्वि०	"	" " "
सम्बो०	दहि	" " "

शेष रूप गिरि शब्द के समान होते हैं।

महु (मधु) शब्द के रूप

प्र०	महुं	महूणि,-इँ,-इं
द्वि०	"	" " "
सम्बो०	महु	" " "

शेष रूप तरु शब्द के समान होते हैं।

राय (राजन्) शब्द के रूप

प्र०	राया	राया,-णो, राइणो
द्वि०	रायं, राइणं	राए राया -णो, राइणो
तृ०	राइणा, रण्णा, रायेण-णं	रायेहि,-हिँ,-हि, राईहि,-हिँ,-हि
प०	रण्णो, राइणो, रायत्तो, रायाउ,-ओ,-हिन्तो	रायत्तो, रायाउ,-ओ,-हिन्तो-सुन्तो राइत्तो राईउ, ओ,-हिन्तो,-सुन्तो
प०	रण्णो, राइणो, रायस्स	राईण,-णं, रायाण,-णं
स०	राये, रायम्मि, राइम्मि	राईसु,-सुं, रायेसु,-सुं
सम्बो०	राया, राय	राया,-णो, राइणो

सर्वनाम शब्द[1]

सव्व (सर्व) शब्द के रूप

प्र०	सव्वो	सव्वे
द्वि०	सव्वं	सव्वे, सव्वा
तृ०	सव्वेण,-णं	सव्वेहि,-हिँ,-हिं
प०	सव्वत्तो, सव्वा,-उ,-ओ, हि,-हिन्तो	सव्वत्तो, सव्वाउ,-ओ, हि,-हिन्तो, सुन्तो, सव्वेहिन्तो,-सुन्तो
ष०	सव्वस्स	सव्वेसिं, सव्वाण, ण
स०	सव्वस्सि,-म्मि,-हिं,-त्थ	सव्वेसु,-सुं

सव्वा शब्द के रूप माला शब्द के समान होते हैं केवल षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में सव्वेसिं रूप भी होता है। सव्व (नपुं॰) शब्द के रूप प्रथमा द्वितीया विभक्ति में वण शब्द की भांति होते हैं शेष सव्व (पुं०) शब्द के समान होते हैं।

ज (यद्) शब्द के रूप

यद् = ज (पुल्लिङ्ग)

प्र०	जो	जे
द्वि०	जं	जे, जा
तृ०	जेण,-णं, जिणा	जेहि,-हिँ,-हिं
प०	जम्हा, जत्तो, जा,-ओ,-उ, हि,-हिन्तो	जत्तो,-जाओ,-उ,-हि,-हिन्तो,-सुन्तो, जेहि, हिन्तो,-सुन्तो
ष०	जस्स जास	जेसिं, जाण,-णं
स०	जाहे, जाला, जइआ, जहिं,-म्मि,-स्सि, त्थ	जेसु, सुं

---

१. सर्वनाम शब्दों की विस्तृत रूपावलि के लिए देखिए हेमचन्द्र कृत एव डॉ. पी एल वैद्य द्वारा सम्पादित प्राकृत-व्याकरण ८।३।५८ सूत्र से ८।३।११७ सूत्र तक।

यद् = जी, जा (स्त्रीलिंग)

प्र०	जा	जी,-उ,-आ,-ओ, जा,-उ,-ओ
द्वि०	जं	” ”
तृ०	जीअ,-आ,-इ,-ए, जाअ,-इ,-ए,	जीहि,-हिँ,-हिं, जाहि,-हिँ,-हिं,
प०	जित्तो, जीओ,-आ,-इ,-ए,-ओ, उ,-हिन्तो, जा,-अ,-इ,-ए, जम्हा, जत्तो, जाओ,-उ,-हिन्तो,	जत्तो, जाओ,-उ,-हिन्तो,-सुन्तो, जित्तो, जीओ,-उ,-हिन्तो,-सुन्तो,
प०	जिस्सा, जीसे, जीअ-आ, इ,-ए, जाअ,-इ,-ए,	जेसिं, जाण,-णं
स०	जीअ,-आ,-इ,-ए, जाअ,-इ,-ए,	जीसु,-सुं, जासु,-सुं

यद् = जं (नपुंसकलिंग)

प्र०	जं	जाणि,-इँ,-इं
द्वि०	”	”

शेष रूप पुल्लिङ्ग शब्द के समान होते हैं।

तीनों लिङ्गों में समान—युष्मद् शब्द के रूप

प्र०	तुं तुम, तुयं, तुह	तुम्हे, तुम्ह
द्वि०	”	” वो
तृ०	तए, तुमे	तुम्हेहिं, तुज्झेहिं
प०	तुमाओ, तुमाहिंतो, तुज्झ	तुम्हत्तो, तुज्झत्तो
प०	तुय, तुह, ते, तुज्झ, तुम्ह	तुम्हाण-णं
स०	तुमे, तुमम्मि, तुहम्मि	तुमसु, तुम्हेसु, तुम्हासु

तीनों लिङ्गों समान-अस्मद् शब्द के रूप

प्र०	अहं, हं	अम्हे
द्वि०	ममं, मं	अम्हे
तृ०	मइ, मए	अम्हेहि
प०	ममत्तो, ममाओ, मज्झत्तो	अम्हत्तो, अम्हाहिन्तो, ममाहिन्तो
ष०	अम्ह, मज्झ, मम,	अम्हाण,-णं, ममाण,-णं
स०	अम्हम्मि	अम्हेसु, अम्हासु, ममसु

संख्या-शब्द

प्राकृत बोलियों में एक के लिए प्रायः एकक का प्रयोग होता है। स्त्रीलिंग में एक्का रूप है। इनकी रूपावली क्रमशः सव्व तथा सव्वा की भाँति होती है। द्वि, त्रि, चतुर, पञ्चन्, षष् , सप्तन् आदि को प्राकृत के तीनों लिङ्गों में क्रमशः दु, ति, चउ, पंच, छ, सत्त आदि हो जाते हैं। इनके रूप बहुवचन में ही चलते हैं।

	दु (द्वि) शब्द के रूप	ति (त्रि) शब्द के रूप
प्र०, द्वि०	दुवे, दोण्णि	तिण्णि
तृ०	दोहि, हिँ,-हिं	तीहि,-हिँ,-हिं
प०	दुत्तो, दोओ, उ,-हिन्तो,-सुन्तो	तित्तो, तीओ,-उ,-हिन्तो,-सुन्तो
ष०	दोण्हं, दुण्ह	तिण्ह, तिण्हं
स०	दोसु,-सुं	तीसु, सुं

	चउ (चतुर्) शब्द के रूप	पंच (पञ्चन) शब्द के रूप
प्र०, द्वि०	चत्तारो, चउरो, चत्तारि	पंच
तृ०	चऊहि,-हिँ,-हिं	पंचेहि,-हिँ,-हिं
प०	चउत्तो, चऊओ आदि	पंचत्तो, पंचाओ...आदि
ष०	चउण्ह,-ण्हं	पंचण्ह,-ण्हं
स०	चऊसु,-सुं	पंचसु,-सुं

इसी प्रकार अन्य संख्यावाचक शब्दों के रूप होते हैं।

सातवाँ अध्याय

धातुरूप

प्राकृत धातुरूपों की प्रमुख विशेषताएँ[1]—

१—शब्दरूपों की भाँति द्विवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग।
हसत = हसन्ति, अनुभवत = अणुहोंति।

२—अ विकरण जोड़कर व्यञ्जनान्त धातु का स्वरान्त धातु में परिवर्तन।
हस् = हस भण् = भण।

३—भ्वादिगण के धातुरूपों की ओर अन्य गणों के धातुरूपों का झुकाव।
तनोति = तणइ, रुष्यति = रूसइ।

४—प्राय परस्मैपद का प्रयोग।
लप्स्यते = लहिस्सइ, सहे = सहेमि गम्यते = गच्छीअदि आदि।

५—काल की दृष्टि से वर्तमान काल (लट लकार) भूतकाल (लिट् आदि), भविष्यत् काल (लट्) तथा अन्य तीन प्रकारों—आज्ञार्थक (लोट्), विध्यर्थक (विधि लिङ्) एव क्रियातिपत्ति (लङ्)—मे धातुरूपावली दृष्टिगोचर होती है। आज्ञार्थक एव विध्यर्थक रूपावलि प्राय समान होती है।

६—भूत काल के लिए प्राय सहायक क्रियाओं के साथ कृदन्त रूपों को व्यवहार में लाया जाता है।
जैसे—वहन्तो आसि।

---

१ देखिए पि० प्रा० पारा न० ४६२ एव Introduction To Prakrit Page 42(113)

कर्तृवाच्य

वर्तमानकाल

धातु-प्रत्यय

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	संस्कृत	प्राकृत	संस्कृत	प्राकृत
प्रथम	तिप्, त	इ, ए[1]	झि, झ	न्ति, न्ते, इरे[2]
मध्यम	सिप्, थास्	सि, से[3]	थ, ध्वम्	इत्था, ह[4]
उत्तम	मिप्, इट्	मि[5]	मस्, महिङ्	मो, मु, म[6]

हस धातु के रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हसइ, हसए	हसन्ति, हसन्ते, हसिरे
मध्यम ,,	हससि, हससे	हसित्था, हसह
उत्तम ,,	हसामि,[7] हसमि	हसिमो,-मु,-म, हसामो,-मु,-म,[8] हसमो,-मु, म

---

१. त्यादीनामाद्यत्रयस्याद्यस्येचेचौ ॥८।३।१३९॥हे०॥
त्यादि विभक्तियों के आदि त्रय (प्रथम पुरुष) के आदि (एकवचन) के प्रत्यय (तिप् , त) के स्थान में इच (इ) एच् (ए) होते हैं।

२. बहुष्वाद्यस्य न्ति न्ते इरे ॥८।३।१४२।हे०॥
प्रथम पुरुष बहुवचन (झि, झ) को न्ति, न्ते, इरे होते हैं।

३. द्वितीयस्य सि से ॥८।३।१४०।हे०॥
मध्यम पुरुष के एकवचन (सिप् , थास्) को सि, से होते हैं।

४. मध्यमस्येत्था-हचौ ॥८।३।१४३।हे०॥
मध्यमपुरुष बहुवचन (थ, ध्वम्) को इत्था, ह होते हैं।

५. तृतीयस्य मि ॥८।३।१४१ हे०॥
उत्तमपुरुष के एकवचन (मिप्, इट्) को मि होता है।

६. तृतीयस्य मो मु मा. ॥८।३।१४४ हे०।
उत्तमपुरुष के बहुवचन (मस्, महिङ्) को मो, मु, म होते हैं।

७. मौ वा ॥८।३।१५४ हे०॥
अदन्त धातु के अ को मि परे रहते विकल्प से आ होता है।

८. इच मो-मु मे वा ॥८।३।१५५।हे०।
अदन्त धातु के अ को मो-मु म परे रहते विकल्प से इ तथा आ होते हैं।

अदन्त धातु के अकार को वर्तमान काल परे रहते विकल्प से एकार होता है। तब हसेइ हसेसि आदि रूप होते हैं।[1]

हो (भू) धातु के रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	होइ[2]	होन्ति, होन्ते, होइरे
मध्यम पु०	होसि	होइत्था, होह
उत्तम ,,	होमि	होमो,-मु, म

भूतकाल

धातु प्रत्यय

सी ही हीअ (केवल स्वरान्त धातु को)[3]

ईअ (केवल व्यञ्जनान्त धातु को)[4]

हो (भू) धातु के रूप

प्रथम पुरुष एक वचन—होसी, होही तथा होहीअ।

---

१ वर्तमाना-पञ्चमी शतृषु वा ॥८।३।१५८।हे०॥
वर्तमानकाल, पञ्चमी विभक्ति तथा शतृ प्रत्यय परे रहते अ को विकल्प से ए होता है।

२. अत एवैच् से ॥८।३।१४५।हे०॥
अकारान्त धातु से परे ही एच् तथा से आदेश होते हैं।

३. सी ही हीअ भूतार्थस्य ॥८।३।१६२।हे०।
स्वरान्त धातुओं से भूतार्थ में विहित प्रत्यय को सी, ही, हीअ आदेश होते हैं।

४ (अ) व्यञ्जनादीअ ॥८।३।१६३।हे०॥
व्यञ्जनान्त धातुओं से भूतार्थ में विहित प्रत्यय को ईअ आदेश होता है।

(ब) उक्त प्रत्यय प्रथमपुरुष एक वचन के प्रतीत होते हैं क्योंकि हमें साहित्य में प्रथमपुरुष बहुवचन के लिए इसु अंसु प्रत्यय पाते हैं। जैसे गच्छिसु, गच्छंसु। देखिए डा पी एल वैद्य द्वारा सम्पादित हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण की टिप्पणी पृ २४।

हस धातु के रूप

प्रथम पुरुष एक वचन—हसीअ।

भविष्यत्काल

धातु-प्रत्यय

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	हिइ,[1] हिए	हिन्ति, हिन्ते, हिइरे
मध्यम	हिसि, हिसे	हित्था, हिह
उत्तम	स्सं[2], स्सामि[3], हामि हिमि	स्सामो -मु, म, हामो,-मु,-म, हिमो,-मु,-म हिस्सा, हित्था[4]

हस् धातु के रूप

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	हसिहिइ,[5]-ए,	हसिहिन्ति,-न्ते,-रे
मध्यम	हसिहिसि,-से	हसिहित्था,-ह,
उत्तम	हसिस्सं, हसिस्सामि हसिहामि, हसिहिमि	हसिस्सामो -मु, म,-हसिहामो,-मु,-म, हसिहिमो, मु,-म, हसिहित्था,-स्सा

---

१. भविष्यति हिरादिः ॥८।३।१६६।है०॥
भविष्यत् अर्थ में विहित प्रत्यय के पूर्व हि का प्रयोग होता है।

२. मे. स्सं ॥८ ३।१६९।है०॥
धातु से परे भविष्यत् काल में आदेश मि के स्थान पर विकल्प से स्सं का प्रयोग होता है।

३. मि-मो-मु-मे स्सा हा न वा। ८।३।१६७।है०॥
भविष्यत् अर्थ में मि, मो, मु, म परे रहते उनके पूर्व स्सा तथा हा विकल्प से होते हैं।

४. मो मु-माना हिस्सा हित्था ॥८।३।१६८।है०॥
भविष्यत् काल में धातु से परे मो, मु, म को विकल्प से हिस्सा, हित्था-आदेश होते हे।

५. एच क्त्वा-तुम्-तव्य-भविष्यत्सु ॥८ ३।१५७।है०॥
क्त्वा, तुम, तव्य तथा भविष्यत् काल में विहित प्रत्यय परे रहते अ को इ तथा ए होते हैं।

पक्ष में हस के सकारवर्ती अ को ए हो जाता है और फिर रूप हसेहिइ, हसेहिसि, इस तरह चलते हैं।

हो (भू) धातु के रूप

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पु०	होहिइ	होहिन्ति, होहिन्ते, होहिरे
मध्यम पु०	होहिसि	होहित्था, होहिह
उत्तम पु०	होस्सं, होस्सामि होहामि, होहिमि	होस्सामो,-मु, म, होहामो,-मु,-म, होहिमो, मु,-म, होहिस्सा, होहित्था

विध्यर्थक तथा आज्ञार्थक

धातु प्रत्यय

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	उ[1]	न्तु[2]
मध्यम	लुक्, सु, इज्जसु, इज्जहि, इज्जे[3], हि[4]	ह
उत्तम	मु	मो

१. दु सु मु विध्यादिष्वेकस्मिंस्त्रयाणाम् ॥८।३।१७३।हे ॥
विध्यादि अर्थ मे तीनो पुरुषो के एकवचन के प्रत्ययो को क्रमश: दु सु मु होते हैं।

२. बहुषु न्तु ह मो ॥८ ३.१७६।हे०॥
विध्यादि अर्थ मे तीनों पुरुषो के बहुवचन के प्रत्ययो को क्रमश न्तु ह मो, होते हैं।

३ अत इज्जस्विज्जहीज्जे लुको वा ॥८।३।१७५।हे०॥
अ से परे सु को विकल्प से इज्जसु, इज्जहि, इज्जे होते हैं अथवा सु का लोप होता है।

४. सोर्हिर्वा ॥८।३ १७४।हे०।
पूर्वसूत्रविहित सु को विकल्प से हि होता है।

हस धातु के रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमपु०	हसउ	हसन्तु
मध्यम पु०	हस, हससु, हसहि हसेज्जसु, हसेज्जहि, हसेज्जे	हसह
उत्तम पु०	हसामु, हसिमु, हसमु	हसामो, हसमो, हसिमो

पक्ष में सर्व पुरुष सर्व वचन मे—हसेज्ज हसेज्जा।[1]

हो (भू) धातु के रूप

	एक वचन	बहुवचन
प्रथम पु०	होउ	होन्तु
मध्यम पु०	होहि, होसु	होह
उत्तम पु०	होमु	होमो

क्रियातिपत्ति

धातु-प्रत्यय

सभी पुरुषों तथा सभी वचनों में—ज्ज, ज्जा, न्त, माण[2]

हस धातु के रूप

सभी पुरुषों तथा सभी वचनों मे—हसेज्ज, हसेज्जा, हसन्तो, हसमाणो।

---

१ वर्तमाना-भविष्यन्त्योश्च ज्ज ज्जा वा ८।३।१७७।हे०।।
वर्तमान, भविष्यत् तथा विध्यादि अर्थ में विहित प्रत्ययो को ज्ज तथा ज्जा होते हैं।

२. (अ) क्रियातिपत्ते ८।३।१७९।हे ।।
क्रियातिपत्ति में प्रत्ययों को ज्ज, ज्जा होते हैं।

(ब) न्त माणौ ८।३।१८०।हे०।।
क्रियातिपत्ति में प्रत्ययो को न्त, माण आदेश होते हैं।

हो (भू) धातु के रूप

सभी पुरुषों तथा वचनों में—होज्ज, होज्जा, होन्तो, होमाणो।

अनियमित-धातुरूप

अस धातु

वर्तमानकाल

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अत्थि	अत्थि
म० पु०	अत्थि, सि	अत्थि
उ० पु०	अत्थि, म्हि	अत्थि, म्हो, म्ह,

भूतकाल

सभी पुरुषों तथा सभी वचनों में—आसि, अहेसि।

भविष्यत्काल विध्यर्थक तथा आज्ञार्थक

सभी पुरुषों तथा सभी वचनों में—अत्थि।

प्रेरणार्थक (णिजन्त) रूप

धातु से प्रेरणार्थक क्रिया रूप बनाने के लिए णि के स्थान पर अ, ए, आव, आवे—ये चार आदेश होते हैं। जैसे—हासइ, हासेइ, हसावइ, हसावेइ।

कर्म तथा भाववाच्य

वर्तमानकाल, भूतकाल, विध्यर्थक एव आज्ञार्थक में कर्म तथा भाववाच्य रूपों के लिए तत् तद् धातु-प्रत्ययों के पूर्व ईअ तथा इज्ज प्रत्यय जोड़े जाते हैं। जैसे—हसीअइ, हसिज्जइ आदि। भविष्यत् काल एवं क्रियातिपत्ति में कर्म तथा भाव वाच्य के रूप कर्तृ वाच्य के समान होते हैं।

प्रेरणार्थक (णिजन्त) रूप

मूल धातु में आवि प्रत्यय जोड़ने या तद्गत अन्तिम अ को आ कर देने के बाद कर्म तथा भाववाच्य के प्रत्यय ईअ एवं इज्ज जोड़ने से प्रेरणार्थक कर्म तथा भाववाच्य के रूप बनते हैं।

जैसे—हसावीअइ, हसाविज्जइ, हासीअइ, हासिज्जइ आदि।

आठवाँ अध्याय

कारक

प्राकृत में कारकसम्बन्धी नियम कुछ विशेषताओं को छोड़कर संस्कृत के समान हैं। विशेषताएँ निम्न हैं —

(१) द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी तथा सप्तमी विभक्ति के स्थान पर कहीं-कहीं षष्ठी विभक्ति होती है।[१]
सीमाधरं वन्दे = सीमाधरस्स वन्दे।
धनेन लब्धः = धणस्स लद्धो।
चोराद्बिभेति = चोरस्स बीहइ।
पृष्ठे केशभार = पिट्ठीए केसभारो।

(२) द्वितीया तथा तृतीया विभक्ति के स्थान पर कहीं-कहीं सप्तमी विभक्ति होती है।[२]
ग्रामं वसामि = गामे वसामि।
तैरलंकृता पृथ्वी = तेसु अलंकिआ पुहवी।

(३) पञ्चमी विभक्ति के समान पर कहीं-कहीं तृतीया तथा सप्तमी विभक्ति होती है।[३]
चोराद्बिभेति = चोरेण बीहइ।
अन्तःपुराद् रन्त्वागतो राजा = अन्तेउरे रमिउमागओ राया।

(४) सप्तमी विभक्ति के स्थान पर कहीं-कहीं द्वितीया विभक्ति होती है।[४]
विद्युदुद्योते स्मरति रात्रिम् = विज्जुज्जोयं भरइ रत्तिं।

(५) अर्धमागधी प्राकृत में सप्तमी विभक्ति की जगह तृतीया विभक्ति भी देखी जाती है।[५]
तस्मिन् काले तस्मिन् समये = तेणं कालेणं तेणं समएणं।

---

१. क्वचिद् द्वितीयादेः ॥८।३।१३४ हे०॥
२. द्वितीया-तृतीययोः सप्तमी ॥८।३।१३५ हे०॥
३. पञ्चम्यास्तृतीया च ।८।३।१३६ हे०॥
४. सप्तम्या द्वितीया ।८।३।१३७ हे०॥
५. आर्षे तृतीयापि दृश्यते (हे० सूत्र ८।३।१३७ की वृत्ति)।

नवाँ अध्याय

समास

समास का प्राकृत वैयाकरणों ने अलग से कोई उल्लेख नहीं किया है। अतः समास की दृष्टि से प्राकृत में संस्कृत से कोई अन्तर नहीं है। यथा—

अव्ययीभाव समास—

गुरुणो समीवं = उवगुरु (समीप अर्थ मे)

जिणस्स पच्छा = अणुजिणं (पश्चात् अर्थ में)। आदि।

तत्पुरुष समास—

पुव्वं कायस्स = पुव्वकायो प्रथमा तत्पुरुष)

भद्दं पत्तो = भद्दपत्तो (द्वितीया तत्पुरुष)

गुणेहिं संपन्नो = गुणसंपन्नो (तृतीया तत्पुरुष)

लोगस्स सुहो = लोगसुहो (चतुर्थी तत्पुरुष)

चोराओ भयं = चोरभय (पञ्चमी तत्पुरुष)

देवस्स इन्दो = देविन्दो (षष्ठी तत्पुरुष)

कलासु कुसलो = कलाकुसलो (सप्तमी तत्पुरुष)

न विरई = अविरई (नञ्तत्पुरुष)। आदि।

कर्मधारय समास—

महन्तो सो वीरो = महावीरो (विशेषणपूर्वपद)

कुमारी अ सा गब्भिणी = कुमारगब्भिणी (विशेष्यपूर्वपद)

चंदो इव मुहं = चन्दमुहं (उपमानपूर्वपद)

मुहं चंदो व्व = मुहचन्दो (उपमानोत्तरपद)। आदि।

द्विगु समास—

नवण्हं तत्ताणं समाहारो = नवतत्तं (एकवद्भावी)

तिण्णि लोया = तिलोया (अनेकवद्भावी)

द्वन्द्व समास—

देवा अ देवीओ अ = देवदेवीओ (इतरेतरद्वन्द्व)
तवो अ संजमो अ एएसि समाहारो = तवसंजमं (समाहारद्वन्द्व)
माआ य पिआ य त्ति = पिअरा (एकशेषद्वन्द्व)

बहुव्रीहि समास—

पीअ अबर जस्स सो = पीअवरो (समानाधिकरण)
णीलो कण्ठो जस्स सो = णीलकण्ठो (विशेषणपूर्वपद)
चन्दो इव मुह जाए = चन्दमुही (उपमानपूर्वपद)
धुओ सव्वो किलेसो जस्स सो = धुअसव्वकिलेसो (बहुपद)
न अत्थि भयं जस्स सो = अभयो (नञ)। आदि।

दशवाँ अध्याय

कृत्प्रत्यय

वर्तमानकृदन्त

(१) संस्कृतप्रत्यय शतृ, शानच् के स्थान पर धातु में न्त, माण प्रत्यय जोड़ने पर वर्तमान कृदन्त के रूप बनते हैं।[1] स्त्रीलिङ्ग में न्त एवं माण के साथ ई प्रत्यय भी जुड़ता है।[2]

(२) न्त, माण तथा ई प्रत्यय के पूर्ववर्ती अ को विकल्प से ए हो जाता है।

कर्तृवाच्य वर्तमानकृदन्त—

पुं०	नपुं०	स्त्री०
	हस धातु	
हसन्तो, हसमाणो	हसन्तं, हसमाणं	हसन्ता,-न्ती, हसेन्ता,-न्ती, हसमाणा,-णी,
हसेन्तो, हसेमाणो	हसेन्तं, हसेमाणं	हसेमाणा,-णी, हसई, हसेई
	हो (भू) धातु	
होन्तो, होमाणो	होन्तं, होमाणं	होन्ता-न्ती, होमाणा,-णी, होई

कर्मवाच्य वर्तमानकृदन्त—

हसीअन्तो, हसीअमाणो	हसीअन्तं, हसीअमाणं	हसीअन्ता,-न्ती, हसीअमाणा,-णी

---

१. शत्रानशः ॥८।३।१८१ हे०।
शतृ तथा आनश् (शानच्) को न्त एवं माण आदेश होते हैं।

२. ई च स्त्रियाम् ॥८।३।१८२ हे०।
स्त्रीलिङ्ग में शतृ तथा आनश् (शानच) को ई होता है। चकार से न्त एवं माण प्रत्यय भी होते हैं।

हसिज्जन्तो, हसिज्जमाणो हसिज्जन्त, हसिज्जमाण हसिज्जन्ता, न्ती,
हसिज्जमाणा, णी,
हसीअई, हसिज्जई, आदि

कर्तृवाच्य प्रेरणार्थक वर्तमानकृदन्त—

हस धातु (पु॰)—हासन्तो हासेन्तो, हासमाणो, हासेमाणो, हसावन्तो, हसावेन्तो, हसावमाणो, हसावेमाणो।

कर्मवाच्य प्रेरणार्थक वर्तमानकृदन्त—

हस धातु (पुं॰)—हासीअन्तो, हासीअमाणो, हासिज्जन्तो, हासिज्जमाणो, हसावीअन्तो हसावीअमाणो, हसाविज्जन्तो, हसाविज्जमाणो।

भूतकृदन्त

(१) संस्कृत क्त के स्थान पर प्राकृत में त, द और अ प्रत्यय जोडने से भूतकृदन्त के रूप बनते हैं।

(२) त, द अ प्रत्यय के पूर्ववर्ती अ को इ हो जाता है।

कर्तृवाच्य भूतकृदन्त—

गम + त, द, अ = गमितो, गमिदो, गमिओ (गत)।
चल + त द, अ = चलितो, चलिदो, चलिओ (चलित)। आदि।

कर्मवाच्य भूतकृदन्त—

कर + त, द अ = करितो, करिदो, करिओ (कृत)।
पढ + त द, अ = पढितो, पढिदो, पढिओ (पठित)। आदि।

प्रेरणार्थक (णिजन्त) भूतकृदन्त—

हस धातु (नपु॰)—हसावित, हसाविद, हसाविअ,
हासित, हासिद, हासिअ (हासितम्)।

संस्कृत सिद्ध शब्दों से निर्मित भूतकृदन्त—

गतम् = गअ
कृतम् = कड
मृतम् = मड
जितम् = जिअ
पिहितम् = पिहिअं
आदि।

भविष्यत्कृदन्त

धातु में स्सन्त, स्समाण, स्सई प्रत्यय जोड़ने पर भविष्यत् कृदन्त के रूप बनते हैं।[1] स्सई प्रत्यय केवल स्त्रीलिङ्ग में जुड़ता है।
हस (पु०)—हसिस्सन्तो, हसिस्समाणो (हसिष्यत्, हसिष्यमाण)।
(स्त्री०)—हसिस्सई (हसिष्यन्ती) आदि।

हेत्वर्थककृदन्त

(१) संस्कृत तुम् प्रत्यय के स्थान पर धातु में तु, दु, उ तथा त्तए प्रत्यय लगाने पर हेत्वर्थक कृदन्त के रूप बनते हैं। त्तए प्रत्यय का प्रयोग अर्धमागधी में सबसे ज्यादा होता है।[2]

(२) तुं, दु, उ एवं त्तए प्रत्ययों के पूर्ववर्ती अ को इ तथा ए हो जाते हैं।
हस + तु, दु, उ = हसितु, हसेतु, हसिदु, हसेदु, हसिउ, हसेउ (हसितुं)।
कर + त्तए = करेत्तए, करित्तए (कर्तुं)।

सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त

(१) संस्कृत क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय के स्थान पर धातु में तु, अ, तूण, तुआण, इत्ता, इत्ताण, आय, आए प्रत्यय लगाने पर सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त के रूप बनते हैं।[3]

(२) सम्बन्धसूचक-भूतकृदन्त के प्रत्ययों के ण पर विकल्प से अनुस्वार हो जाता है।

---

१. वर्तमानकालीन कृदन्त प्रत्ययों के पूर्व स्स जोड़ने से भविष्यत्कालीन कृदन्त के प्रत्यय बनते हैं।

२. देखिए पि० प्रा० पारा नं० ५७८।

३. तुआण, इत्ता, इत्ताण, आय तथा आए प्रत्ययों का प्रयोग प्राय अर्धमागधी में दृष्टिगोचर होता है। (देखिए पि० प्रा० पारा नं० ५८३, ५९३)।

(३) सम्बन्धसूचक-भूतकृदन्त के प्रत्ययों के पूर्ववर्ती अ को प्रयोगानुसार इ और ए आदेश होते हैं।

हस + तुं = हसिउं, हसेउं (हसित्वा)
हस + अ = हसिअ, हसेअ (हसित्वा)
हस + तूण = हसिऊण-णं, हसेऊण-णं (हसित्वा)
हस + तुआण = हसिउआण-णं, हसेउआण-णं (हसित्वा)
कर + इत्ता = करित्ता (कृत्वा)
कर + इत्ताण = करित्ताण, करित्ताणं (कृत्वा)
गह + आय = गहाय (गृहीत्वा)
आया + आए = आयाए (आदाय)

विध्यर्थकृदन्त

(१) धातु में तव्व, अणिज्ज तथा अणीअ प्रत्यय लगाने से विध्यर्थक-कृदन्त के रूप बनते हैं।

(२) संस्कृत के विध्यर्थक यत् प्रत्यय को प्राकृत में ज्ज हो जाता है।

(३) तव्व प्रत्यय के पूर्ववर्ती अ को इ तथा ए हो जाते हैं।

हस + तव्व = हसिअव्वं, हसेअव्वं, हसितव्वं, हसेतव्वं (हसितव्यम्)
हस + अणिज्ज, अणीअ = हसणिज्जं, हसणीअं (हसनीयम्)
कर + अणिज्ज, अणीअ = करणिज्जं, करणीअं (करणीयं)
कर + ज्ज = कज्जं (कार्यं)। इसी तरह वज्जं (वर्ज्यम्)।

कर्तृसूचक-कृदन्त

धातु में इर प्रत्यय लगाने पर कर्तृसूचक कृदन्त के रूप बनते हैं।
हस + इर = हसिरो (हसनशील पुरुष)
हसिरा (हसनशीला स्त्री)
तुर + इर = तुरिरो। इत्यादि।

ग्यारहवाँ अध्याय

तद्धितप्रत्यय

अण्>एच्चय, यौष्माकम् = तुम्हेच्चय, आस्माकम् = अम्हेच्चयं ।[1]

कन्>अ, चन्द्रक = चंदओ, चन्दो, बहुकम् = बहुअयं, बहुअं ।[2]

इल्ल, पल्लवक = पल्लविल्लो, पल्लवो ।

उल्ल, पितृक = पिउल्लो, पिआ, हस्तक = हत्थुल्लो, हत्थो ।

ल्लो, एकक = एकल्लो, एक्को, नवक = नवल्लो, नवो ।[3]

कृत्वस्>हुत्त शतकृत्व = सयहुत्त, सहस्रकृत्व = सहस्सहुत्त ।[4]

ख>इक, सर्वाङ्गीण = सव्वङ्गिओ ।[5]

भवार्थक प्रत्यय>इल्ल, ग्रामीणम् = गामिल्ल, पौरी = पुरिल्ला[6] ।

उल्ल, आत्मनि भवम् = अप्पुल्ल ।

---

१ युष्मदस्मदोञ एच्चय ॥८।२।१४९।हे०॥
युष्मद एवं अस्मद शब्द से इदमर्थक अ (अण्, पा०) को एच्चय होता है ।

२ स्वार्थे कश्च वा ॥८।२।१६४।हे०॥
स्वार्थ में विकल्प से क तथा डित्, इल्ल, उल्ल प्रत्यय होते हैं ।

३. ल्लो नवैकाद्वा ॥८।२।१६५।हे०॥
नव तथा एक शब्द को स्वार्थ में ल्लो विकल्प से होता है ।

४. कृत्वसो हुत्तं ॥८।२।१५८।हे०॥
कृत्वस् (कृत्वसुच्) प्रत्यय को हुत्त आदेश होता है ।

५. सर्वाङ्गादीनस्येकः ॥८।२।१५१।हे०॥
सर्वाङ्ग शब्द के ईन (ख) को इक होता है ।

६ डिल्ल डुल्लौ भवे ॥८।२।१६३।हे०॥
भवार्थ में शब्द से परे डित् इल्ल उल्ल प्रत्यय होते हैं ।

छ > एय, आत्मीयम् = अप्पणयं ।[1]
केर, युष्मदीय = तुम्हकेरो, अस्मदीय = अम्हकेरो ।[2]
क्क, परकीयम् = पारक्कं, पारकेरं ।[3]
इक्क, राजकीयम् = राइक्कं, रायकेरं ।
ण > इकट्, पान्थः = पहिओ ।[4]
तसिल् > त्तो, दो ; सर्वत. = सव्वत्तो, सव्वदो, सव्वओ, यतः = जत्तो, जदो, जओ ।[5]
तैलच् > एल्ल, कटुतैलं = कडुएल्लं ।[6]
त्रल् > हि, ह, त्थ ; यत्र = जहि, जह, जत्थ; तत्र=तहि तह, तत्थ ।[7]
त्व > डिमा, त्तण ; पीनत्वम् = पीणिमा पीणत्तणं ।[8]
दा > सि, सिअं, इआ ; एकदा = एक्कसि, एक्कसिअं, एक्कइआ एगया ।[9]

---

१. ईयस्यात्मनो णयः ॥८ २।१५३।है०॥
आत्मन् शब्द से परे ईय (छ) को णय आदेश होता है ।

२. इदमर्थस्य केरः ।८।२।१४७।हे०॥
इदमर्थक प्रत्यय को केर आदेश होता है ।

३. पर-राजभ्यां क्क-डिक्कौ च । ८।२।१४८।हे०॥
पर, राजन् शब्द से परे इदमर्थक प्रत्यय को क्रमशः डित् क्क एवं इक्क होते हैं।

४. पथो णस्येकट् ॥८।२।१५२।हे०॥
पथ शब्द से होने वाले ण को इकट् आदेश होता है ।

५. त्तो दो तसो वा । ८।२।१६०।हे०॥
तस (तसिल्) प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से त्तो और दो आदेश होते हैं ।

६. अनङ्कोठात्तैलस्य डेल्लः ॥८।२।१५५।हे०॥
अङ्कोठ वर्जित शब्द से परे तैल (तैलच्) प्रत्यय को डेल्ल आदेश होता है ।

७. त्रपो हि ह-त्थाः ॥८।२।१६१।हे०॥
त्रप् (त्रल्) प्रत्यय को विकल्प से हि, ह, त्थ आदेश होते हैं।

८. त्वस्य डिमा-त्तणौ वा । ८।२।१५४ हे०॥
[redacted] प्रत्यय को विकल्प से डिमा तथा त्तण आदेश होते हैं ।

९. वैकाद्. सि सिअं इआ ॥८।२।१६२।हे० ।
एक शब्द से परे दा को विकल्प से सि, सिअ तथा इआ आदेश होते हैं ।

मतुप > आलु ईर्ष्यावान् = ईसालू, लज्जावान् = लज्जालू।[1]
इल्ल, शोभावान् = सोहिल्लो, छायावान् = छाइल्लो।
उल्ल, विचारवान् = विआरुल्लो, दर्पवान् = दप्पुल्लो।
आल, रसवान् = रसालो, जटावान् = जडालो।
वन्त, धनवान् = धणवन्तो, भक्तिमान् = भत्तिवन्तो।
मन्त, हनुमान् = हणुमन्तो, श्रीमान् = सिरिमन्तो।
इत्त, काव्यवान् = कव्वइत्तो, मानवान् = माणइत्तो।
इर गर्ववान् = गव्विरो, रेखावान् = रेहिरो।
मण, धनवान् = धणमणो, शोभावान् = सोहामणो।
वति > व्व मधुवत् = महुव्व, मथुरावत् = महुरव्व।[2]
परिमाणा- > इत्तिअ, यावत् = जित्तिअं, तावत् = तित्तिअं, एतावत् = इत्तिअं[3]
र्थक प्रत्यय इत्तिअ, इयत् = एत्तिअं, कियत् = केत्तिअं, एतावत् = एत्तिअं।।
इत्तिल, इयत् = एत्तिलं, यावत् = जेत्तिलं, एतावत् = एत्तिलं।[4]
एद्दह, इयत् = एद्दहं, यावत् = जेद्दहं, एतावत् = एद्दहं।

प्राकृत में एकसे श्रेष्ठ तथा सबसे श्रेष्ठ के अर्थ में तर (अर), तम (अम), ईयस् (ईअस्) तथा इष्ठ (इट्ठ) प्रत्ययों का प्रयोग संस्कृत के समान होता है।

जैसे—

तिक्ख	तिक्खअर	तिक्खअम
पिअ	पिअअर	पिअअम
गुरु	गरीयस	गरिट्ठ
पटु	पटीयस, पटुअर	पटिट्ठ पटुअम आदि।

बारहवाँ अध्याय

स्त्रीप्रत्यय[1]

प्राकृत में केवल तीन ही स्त्री प्रत्यय (आ, ई, ऊ) दृष्टिगोचर होते हैं तथा इनका प्रयोग संस्कृत के ही समान होता है। जैसे—

१—आ प्रत्यय

अकारान्त शब्दों को स्त्रीलिङ्ग बनाने में आ प्रत्यय का उपयोग होता है।

अअ + आ = अआ (अजा)

वच्छ + आ = वच्छा (वत्सा)

निउण + आ = निउणा (निपुणा)

पढम + आ = पढमा (प्रथमा)

(३) अजातिवाचक पुंलिंग शब्दों से स्त्रीलिंग बनाने के लिए ई प्रत्यय विकल्प से होता है।

नील + ई, आ = नीली, नीला (नीली)
हसमाण + ई, आ = हसमाणी, हसमाणा (हसमाना) आदि।

(४) छाया तथा हरिद्रा शब्दों से स्त्रीलिंग की विवक्षा में विकल्प से ई प्रत्यय होता है।

छाया + ई = छाही छाया, हल्दा + ई = हलद्दी हलद्दा (हरिद्रा)।

(५) सु, अम्, आम् को छोड़कर अन्य सुप् परे रहते किम् यद् तद् शब्दों से स्त्रीलिंग की विवक्षा में विकल्प से ई प्रत्यय होता है। कीओ, काओ, जीओ, जाओ, तीओ, ताओ, इत्यादि।

३—ऊ प्रत्यय

आर्य शब्द से स्त्रीलिंग की विवक्षा में कहीं-कहीं ऊ प्रत्यय लगता है।

अज्ज + ऊ = अज्जू (आर्या)[1]

---

१ श्वश्र्वां वाच्यायाम्। हे० सूत्र ८।१।७७ की वृत्ति।

तेरहवाँ अध्याय

लिङ्गानुशासन

प्राकृत में संस्कृत के समान सभी संज्ञाएँ तीन लिंगों—पुंलिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग—में विभक्त की गयी हैं। लिंग व्यवस्था की निम्न विशेषताएँ संस्कृत से भिन्न हैं—

(१) प्रावृष्, शरद् तथा तरणि शब्दों का प्रयोग पुंलिंग में होता है।[1]
प्रावृट्, (स्त्री०) = पाउसो (पुं०), शरद् (स्त्री०) = सरओ (पुं०), तरणि. (स्त्री०) = तरणी (पुं०)।

(२) दामन्, शिरस् तथा नभस् शब्दों को छोड़ कर शेष सकारान्त एवं नकारान्त शब्दों का प्रयोग प्रायः पुंलिंग में होता है।[2]
यशः (नपुं०) = जसो (पुं०), पयः (नपुं०) = पओ (पुं०)
नर्म (नपुं०) = नम्मो (पुं०), जन्म (नपुं०) = जम्मो (पुं०)।

(३) अक्षि वाचक तथा वचन आदि शब्दों का प्रयोग विकल्प से पुंलिंग में होता है।[3]
अक्षिणी (नपुं०) = अच्छी (पुं०), अच्छीइं (नपुं०), अच्छी (स्त्री०)
चक्षुषी (नपुं०) = चक्खू (पुं०), चक्खूइं (नपुं०)
नयने (नपुं०) = णयणा (पुं०), णयणाइं (नपुं०)
लोचने (नपुं०) = लोअणा (पुं०), लोअणाइं (नपुं०)
वचनानि (नपुं०) = वयणा (पुं०), वयणाइं (नपुं०)
कुलम् (नपुं०) = कुलो (पुं०), कुलं (नपुं०)
माहात्म्यम् (नपुं०) = माहप्पो (पुं०), माहप्पं (नपुं०)
दुःखानि (नपुं०) = दुक्खा (पुं०), दुक्खाइं (नपुं०)
भाजनानि (नपुं०) = भायणा (पुं०), भायणाणि (नपुं०)।
इत्यादि।

---

१. प्रावृट्-शरत्तरणयः पुंसि ।८।१।३१ हे०।।
२. स्नमदाम-शिरो-नभः ।।८।१।३२ हे० ।
३. वाक्ष्यर्थ-वचनाद्याः ।८।१।३३ हे०।।

(४) पृष्ठ, अक्षि तथा प्रश्न शब्दों का प्रयोग विकल्प से स्त्रीलिंग में होता है।[४]

पृष्ठम् (नपुं०) = पुट्ठी (स्त्री०), पुट्ठं (नपुं०)।
अक्षि (नपुं०) = अच्छी (स्त्री०) अच्छं (नपुं०)।
प्रश्नः (पुं०) = पण्हा (स्त्री०), पण्हो (पुं०)।

(५) गुण आदि शब्दों का प्रयोग विकल्प से नपुंसकलिंग में होता है।[५]

गुणाः (पुं०) = गुणाइं (नपुं०), गुणा (पुं०)।
देवाः (पुं०) = देवाणि (नपुं०), देवा (पुं०)।
बिन्दवः (पुं०) = बिन्दूइं (नपुं०), बिन्दुणो (पुं०)।
खड्गः (पुं०) = खग्गं (नपुं०), खग्गो (पुं०)।
मण्डलाग्रः (पुं०) = मण्डलग्गं (नपुं०), मण्डलग्गो (पुं०)।
कररुहः (पुं०) = कररुहं (नपुं०) कररुहो (पुं०)।
वृक्षाः (पुं०) = रुक्खाइं (नपुं०), रुक्खा (पुं०)।

(६) इमान्त तथा अञ्जलि आदि शब्दों का प्रयोग विकल्प से स्त्रीलिंग होता है।[६]

इमान्त शब्द—

गरिमा (पुं०) = एसा गरिमा (स्त्री०), एस गरिमा (पुं०)।
महिमा (पुं०) = एसा महिमा (स्त्री०), एस महिमा (पुं०)। आदि।

अञ्जलि आदि शब्द—

अञ्जलिः (पुं०) = एसा अञ्जली (स्त्री०) एस अञ्जली (पुं०)।
ग्रन्थिः (पुं०) = एसा गण्ठी (स्त्री०), एस गण्ठी (पुं०) आदि।

(७) स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होने पर बाहु शब्द के उकार को आकारादेश हो जाता है।[७]

बाहुः (पुं०) = एसा बाहा (स्त्री०), एसो बाहू (पुं०)।

---

४. पृष्ठाक्षिप्रश्नाः स्त्रियां वा ॥८।१।३५॥
५. गुणाद्याः क्लीबे वा ॥८।१।३४ हे०॥
६. वेमाञ्जल्याद्याः स्त्रियाम् ॥८।१।३५ हे०॥
७. बाहोरात् ॥८।१।३६ हे०॥

(संस्कृतच्छाया)

प्रथम शतक } छादयन्ति ये प्रभुत्व कुपिता दासा इव ये प्रसादयन्ति ।
गाथा ९१ } त एव महिलाना प्रिया शेषा स्वामिन एव वराका ॥१॥

द्वितीयशतक } ते विरला सत्पुरुषा येषा स्नेहोऽभिन्नमुखराग ।
गाथा १३ } अनुदिवसवर्धमान ऋणमिव पुत्रेषु सक्रामति ॥२॥

तृतीयशतक } अद्य गत इत्यद्य गत इत्यद्य गत इति गणनशीलया ।
गाथा ८ } प्रथम एव दिवसार्धे कुड्य रेखाभिश्चित्रितम् ॥३॥

गाथा १७ तन्मित्र कर्त्तव्य यत्किल व्यसने देशकालेषु ।
आलिखितभित्तिपुत्तलकमिव न पराङ्मुख तिष्ठति ॥४॥

गाथा २४ तन्मध्यम एव वर दुर्जनसुजनाभ्या द्वाभ्यामपि न कार्यम् ।
यथा दृष्टस्तापयति खलस्तथैव सुजनोऽदृश्यमान ॥५॥

गाथा ३४ यस्य यत्रैव प्रथम तस्या अङ्गे निपतिता दृष्टि ।
तस्य तत्रैव स्थिता सर्वाङ्ग केनापि न दृष्टम् ॥६॥

चतुर्थशतक } दृढरोपकलुषितस्यापि सुजनस्य मुखाद्विप्रिय कुत ।
गाथा १९ } राहुमुखेऽपि शशिन किरणा अमृतमेव मुञ्चन्ति ॥७॥

गाथा ८० व्यसनेऽनुद्विग्ना विभवेऽगर्विता भये धीरा ।
भवन्त्यभिन्नस्वभावा समेषु विषमेषु सत्पुरुषा ॥८॥

गाथा ९७ धन्यास्ता महिला या दयित स्वप्नेऽपि प्रेक्षन्ते ।
निद्रैव तेन विना नैति का प्रेक्षते स्वप्नम् ॥९॥

अष्टम शतक } सदसद्दु ख सुख च या गृहस्य जानन्ति ।
गाथा १२ } ता पुत्रक महिला शेषा जरा मनुष्याणाम् ॥१०॥

सप्तम शतक } गृहमिव चित्ररहित निर्झरकुहरमिव सलिलशून्यम् ।
गाथा ६ } गोधनरहित गोष्ठमिव तस्या वदन तव वियोगे ॥११॥

गाथा ९५ धन्या बधिरा अन्धास्त एव जीवन्ति मानुषे लोके ।
न शृण्वन्ति पिशुनवचन खलानामृद्धि न प्रेक्षन्ते ॥१२॥

१. गाथावली[1]

प्रथम शतक | णूमेन्ति जे पहुत्तं कुविअं दासा व्व जे पसाअन्ति ।
गाथा ९१ | ते च्चिअ महिलाणं पिआ सेसा सामि च्चिअ वराआ ॥१॥

द्वितीय शतक | ते विरला सप्पुरिसा जाण सिणेहो अहिण्णमुहराओ ।
गाथा १३ | अणुदिअहवड्ढमाणो रिणं व पुत्तेसु संकमइ ॥२॥

तृतीय शतक | अज्जं गओ त्ति अज्जं गओ त्ति अज्ज गओ त्ति गणरीए ।
गाथा ८ | पढम च्चिअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहिँ चित्तलिओ ॥३॥

गाथा १७ तं मित्त काअव्वं ज किर वसणम्मि देसआलम्मि ।
आलिहियभित्तिवाउल्लअं व ण परम्मुहं ठाइ ॥४॥

गाथा २४ ता मज्झिमो च्चिअ वरं दुज्जणसुअणेहिँ दोहिँ वि ण कज्जं ।
जह दिट्ठो तवइ खलो, तहेअ सुअणो अईसन्तो ॥५॥

गाथा ३४ जस्स जह विअ पढमं तिस्सा अङ्गम्मि णिवडिआ दिट्ठी ।
तस्स तहिँ चेअ ठिआ सव्वङ्गं केण वि ण दिट्ठम् ॥६॥

चतुर्थ शतक | दड्ढरोसकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहि विप्पिअं कत्तो ।
गाथा १९ | राहुमुहम्मि वि ससिणो किरणा अमअं विअ मुअन्ति ॥७॥

गाथा ८० वसणम्मि अणुव्विग्गा, विहवम्मि अगव्विआ, भए धीरा ।
होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सप्पुरिसा ॥८॥

गाथा ९७ धण्णा ता महिलाओ जा दइअं सिविणए वि पेच्छन्ति ।
णिद्द च्चिअ तेण विणा ण एइ का पेच्छए सिविणम् ॥९॥

पष्ठम शतक | सन्तमसन्तं दुक्खं सुहं च जाओ घरस्स जाणन्ति ।
गाथा १२ | ता पुत्तअ महिलाओ सेसाओ जरा मनुस्साणम् ॥१०॥

सप्तम शतक | गेहं व वित्तरहिअं णिज्झरकुहरं व सलिलसुण्णविअम् ।
गाथा ९ | गोहणरहिअं गोट्ठं व तीअ वअणं तुह विओए ॥११॥

गाथा ९५ धण्णा बहिरा अन्धा ते च्चिअ जीअन्ति माणुसे लोए ।
ण सुणन्ति पिसुणवअणं खलाण ऋद्धिं ण पेक्खन्ति ॥१२॥

---

१. आन्ध्र के राजा कवि हाल (सातवाहन) समय ६६ ई० द्वारा संकलित गाथासप्तशती (गाहासत्तसई) (प्रो० सदाशिव आत्माराम जोगळेकर द्वारा सम्पादित तथा प्रसाद प्रकाशन पूना द्वारा १९५६ में प्रकाशित) से उद्धृत ।

(संस्कृतच्छाया)

आश्वास—३

गाथा—९ युष्माकमेवैष भर आज्ञामात्रफल प्रमुखशब्दः।
अरुणः छायाग्रहणो विशदं विकसन्त्यात्मना कमलसरांसि ॥१॥

गाथा—१० ते विरलाः सत्पुरुषा येऽभणेन्तो घटयन्ति कार्यालापान्।
स्तोका एव तेऽपि द्रुमा ये अज्ञातकुसुमनिर्गमा ददति फलम्॥२॥

गाथा—१८ अव्यवच्छिन्नप्रसृतोऽधिकमुद्धावति स्फुरितशूरच्छायः।
उत्साहः सुभटानां विषमस्खलितो महानदीनामिव स्रोतः॥३॥

गाथा—१९ मानेन परिस्थापिता कुलपरिपाटिघटिता अनवनतपूर्वा।
चिन्तयितुमपि न तीर्यते अवधूयमाना परेण निजकच्छाया॥४॥

गाथा—२१ आदृतसमरागमना व्यसने अप्युत्सवे च समरागमनसः।
अवसादितविषमार्था धीरा एव भवन्ति संशयेऽपि समर्थाः॥५॥

गाथा—२२ व्यवसायसपिपासाः कथं ते हस्तस्थितं न पारयन्ति यशः।
ये जीवितसन्देहे विषं भुजङ्गा इवोद्वमन्त्यमर्षम्॥६॥

गाथा—२६ यो लङ्घ्यते रविणा यः च क्षप्यते क्षयानलेनापि बहुशः।
कथं स उदितपरिभवो दुस्तर इति प्लवगानां भण्यत उदधिः॥७॥

गाथा—२७ चिन्त्यतां तावच्चिरं कुलव्यपदेशक्षमं वहतां यशः।
लज्जायाः समुद्रस्य च द्वयोरपि किं भवति दुष्करं-
व्यतिक्रमितुम्॥८॥

गाथा—२९ बान्धवस्नेहाभ्यधिको भवति परोऽपि विनयेन सेव्यमानः।
किं पुनः कृतोपकारो निष्कारणस्निग्धबान्धवो दाशरथिः॥९॥

गाथा—३८ मुक्तसलिला जलधरा अभिनवदत्तफलाश्च पादपनिवहाः।
लघुका अपि भवन्ति गुरुका समरमुखावद्धतमण्डला-
माश्च भुजाः॥१०॥

गाथा—३९ दर्पे न मुञ्चतो भुजौ प्रहरणकार्यसुलभा म्रियन्ते महीधरा।
विस्तीर्णो गगनपथो नीयते कस्माद् गुरुरस्य प्रतिपक्ष॥११॥

गाथा—४० धैर्यमेव रक्षन्तो गुरुमपि भर धारयन्ति केवलं सत्पुरुषाः।
स्थानमेवामुञ्चन्तो निःशेषं त्रिभुवनं तापयन्ति रविकराः॥१२॥

गाथा—५७ सम्मुखमिलितैकैकस्मिन्क. किलासन्नसंशये सहाय.।
यावन्न दीयते दृष्टिः कर्त्तव्यं भवति तावच्चिरनिर्वृत्तम्॥१३॥

२. वानरप्रोत्साहनम्[1]

आश्वास—३

गाथा ७ तुम्ह च्चिअ एस भरो आणामेत्तप्फलो पहुत्तणसद्दो ।
अरुणो छाआवहणो विसअ विअसन्ति अप्पणा कमलसरा ॥१॥

गाथा १० ते विरला सप्पुरिसा जे अभणन्ता घडेन्ति कज्जालावे ।
थोअ च्चिअ ते वि दुमा जे अमुणिअकुसुमणिग्गमा देन्ति फलं ॥२॥

गाथा १८ अव्वोच्छिण्णपसरिओ अहिअं उद्धाइ फुरिअसूरच्छाओ ।
उच्छाहो सुभडाण विसमक्खलिओ महाणईण व सोत्तो ॥३॥

गाथा १९ माणेण परिट्ठविआ कुलपरिवाडिघडिआ अणोणअउव्वा ।
चिन्तेउ वि ण तीरइ ओहुप्पन्ती परेण णिअअच्छाया ॥४॥

गाथा २१ आढिअसमराअमणा वसणम्मि वि ऊसवे अ समराअमणा ।
'अवसाइअविसमत्था धीर च्चिअ होन्ति संसए वि समत्था ॥५॥

गाथा २२ ववसाअसप्पिआसा कह ते हत्थट्ठिअं ण पाहिन्ति जसं ।
जे जीविअसंदेहे विस भुअङ्ग व्व उव्वमन्ति अमरिसं ॥६॥

गाथा २६ जो लङ्घिज्जइ रविणा जो अ ससिज्जइ खआणलेण वि बहुसो ।
कह सो उइअपरिहवो दुत्तारो त्ति पवआण भण्णइ उअही ॥७॥

गाथा २७ चिन्तिज्जउ दाव चिरं कुलववएसक्खमं वहन्ताण जसं ।
लज्जाइ समुद्दस्स अ दोण्ह वि किं होइ दुक्करं बोलेउं ॥८॥

गाथा २९ बन्धवणेहब्भहिओ होइ परो वि विणएण सेविज्जन्तो ।
किं उण कओवआरो णिक्कारणणिद्धबन्धवो दासरही ॥९॥

गाथा ३८ मुक्कसलिला जलहरा अहिणअदिण्णप्फला अ पाअवणिवहा ।
लहुआ वि होन्ति गरुआ समरमुहोहरिअमण्डलग्गा अ भुआ ॥१०॥

गाथा ३९ दप्पं ण मुअन्ति भुआ पहरणकज्जमुलहा धरेन्ति महिहरा ।
विरिअण्णो गअणवहो णिज्जइ तीस गुरुअत्तण पडिवक्खो ॥११॥

गाथा ४० धीरच्चिअ रक्खन्ता गरुअं पि भरं धरेन्ति णवर सप्पुरिसा ।
ठाणं च्चिअ अमुअन्ता णीसेसं तिहुअणं तवेन्ति रविअरा ॥१२॥

गाथा ५७ समुद्दमिलिएक्कमेक्कं को दूरं आसण्णमम्मि सद्दाओ ।
वारं ण दिज्जइ दिट्ठी कायव्व होइ तारं विरमिज्जउ ॥१३॥

---

1. श्री प्रवरसेन (श्री शशाङ्क) विरचित रावणवह (सेतुबन्ध) महाकाव्य (डा. राधागोविन्द बसाक द्वारा सम्पादित तथा संस्कृत कालेज कलकत्ता से सन् १९५९ में प्रकाशित) के तृतीय आश्वास से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

गाथा ८२ को निन्दति नीचतमान् गुरुकतरान् कः प्रशंसितुं तरति ।
सामान्यमेव स्थानं स्तुतीनां परिनिन्दनानां च ॥१॥

गाथा ८६३ नित्यं धनदाररहस्यरक्षणे शङ्किनोऽपि आश्चर्यम् ।
आसन्ननीचवर्गा यत् तथापि नराधिपा भवन्ति ॥२॥

गाथा ८६४ प्रेक्षध्वं विपरीतमिदं बह्वी मदिरा मदयति न खलु स्तोका ।
लक्ष्मी पुनः स्तोका यथा मदयति न तथा किल प्रभूता ॥३॥

गाथा ८६६ एके लघुकस्वभावा गुणैर्लघ्वं महन्ति धनऋद्धिं ।
अन्ये विशुद्धचरिता विभवाद् गुणान् विमृग्यन्ति ॥४॥

गाथा ८७८ को वा न पराङ्मुखो निर्गुणानां गुणिनः न कं वा दुन्वन्ति ।
यो वा न गुणी यो वा न निर्गुणः स सुखं जीवति ॥५॥

गाथा ८८० अविवेकशङ्किन एव निर्गुणाः परगुणान् प्रशंसन्ति ।
लब्धगुणाः पुनः प्राघुणो बाढं वा मा परगुणेषु ॥६॥

गाथा ८८१ सर्व एव स्वगुणोत्कर्षलालसो वहति मत्सरोत्साहम् ।
ते पिशुना ये न सहन्ते निर्गुणा परगुणोद्गारान् ॥७॥

गाथा ९०० गुणिनो विभवारूढानां विभविनो गुरुगुणानां न खलु किमपि ।
लघुरेव अन्योन्यं गिरीणां ये मूलशिखरेषु ॥८॥

गाथा ९२५ धर्मप्रसूता कथं भवतु भगवती द्वेष्यसज्जना लक्ष्मीः ।
सा अलक्ष्य एव लक्ष्मीनिभा या अनार्येषु ॥९॥

गाथा ९२६ या विपुला या चिरं या परिभोगोज्ज्वला लक्ष्म्यः ।
आचारधराणामेव ता न पुनश्चेतराणाम् ॥१०॥

गाथा ९५६ गाढमदमूढहृदया लब्ध्वा धनं गुणं वा यं कमपि ।
कथं ते स्मरिष्यन्ति परं आत्मापि खलु येषां चिरमर्यते ॥११॥

गाथा ९६२ नपरं दोषास्त एव ये मृतस्यापि जनस्य श्रूयन्ते ।
ज्ञायन्ते जीवतोऽपि ये केवलं गुणा अपि त एव ॥ १२ ॥

३. सुभाषितानि[1]

गाथा ८२ को णिन्दइ णीययमे गरुययरे को पससिउ तरइ ।
सामण्णं च्चिअ ठाण थुईण परि-णिन्दणाण च ॥१॥

गाथा ८६३ णिच्च घण-दार-रहस्स रक्खणे सङ्किणो वि अच्छरियं ।
आसण्णणीयवग्गा ज तह वि णराहिवा होन्ति ॥२॥

गाथा ८६४ पेच्छह विवरीयमिम बहुया मइरा मएइ ण हु थोवा ।
लच्छी उण थोवा जह मएइ ण तहा इर बहुया ॥३॥

गाथा ८६६ एक्के लहुय सहावा गुणेहिँ लहिउं महन्ति धणरिद्धिं ।
अण्णे विसुद्ध-चरिआ विहवाहि गुणे विमग्गन्ति ॥४॥

गाथा ८७८ को एत्थ ण परम्मुहो णिग्गुणाण गुणिणो ण कं व दूमेन्ति ।
जो वा ण गुणी जो वा ण णिग्गुणो सो सुह जियइ ॥५॥

गाथा ८८० अविवेय-सहिणो च्चेय णिग्गुणा परगुणे पससन्ति ।
लद्धगुणा उण पहुणो बाढ वा मा परगुणेसु ॥६॥

गाथा ८८१ सव्वो च्चिय सगुणुक्करिसलालसो वहइ मच्छरुच्छाह ।
ते पिसुणा जे ण सहन्ति णिग्गुणा परगुणुग्गारे ॥७॥

गाथा ९०० गुणिणो विहवारूढाण विहविणो गुरुगुणाण ण हु किं पि ।
एहुअ च्चिअ अण्णोण्णं गिरीण जे मूलसिहरेसु ॥८॥

गाथा ९२५ धम्म पसूआ वह होउ भयवई वेस सव्वणा लच्छी ।
ताओ अलच्छिओ च्चिय लच्छि णिहा जा अणज्जेसु ॥९॥

गाथा ९२६ जा विउला जाओ चिर जा परिहोउज्जलाओ लच्छीओ ।
आयारघराणा चिय ताओ ण उणो अ इयराण ॥१०॥

गाथा ९५६ गाढ मय-मूढ हियया लहिउण धण गुण व ज किं पि ।
एए ते भरिहिन्ति परं अप्पा वि हु आण पम्हुसइ ॥११॥

गाथा ९६२ णवर दोसा ते च्चेय जे मयस्स वि जगस्स मुव्वन्ति ।
पज्जत्ति जियन्तस्स वि जे णवर गुणा वि ते च्चेय ॥१२॥

1 श्री वाक्पति (७५० ई० लगभग) विरचित-गउडवहो (शंकर पांडुरंग पंडित द्वारा सम्पादित तथा भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना द्वारा १९२० में प्रकाशित) से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

जयन्ति ते सज्जनभानव सदा
विचारिणो येषा सुवर्ण सचया ।
अदृष्टदोषा विकसन्ति सगमे
कथानुबन्धा कमलाकरा इव ॥ १ ॥

सो जयतु येन सुजना इव दुर्जना इह विनिर्मिता भुवने ।
न तमसा विना प्राप्नुवन्ति चन्द्रकिरणा अपि परहावम् ॥ २ ॥

दुर्जनसुजनेभ्यो नमो नित्य परकार्यव्यापृतमनोभ्य ।
एके भपणस्वभावा परदोषपराङ्मुखा अन्ये ॥ ३ ॥

अथवा न कोऽपि दोषो दृश्यते सकले जीवलोके ।
सर्व एव सुजनजनो यद्गुणाम तन्निशाम्यन्तु ॥ ४ ॥

सज्जनसगेनापि दुर्जनस्य न खलु कलुषत्व समपसरति ।
शशिमण्डलमध्यस्थितोऽपि कृष्ण एव कुरङ्ग ॥ ५ ॥

दुर्जनसगेनापि सज्जनस्य नाश न भवति शीलस्य ।
छिन्न सलवणमपि मुख तथापि खल्वधरो मधु स्रवति ॥ ६ ॥

४. सज्जनदुर्जनचर्चा[1]

जयंति ते सज्जण-भाणुणो सया वियारिणो जाण सुवण्ण-संचया ।
अइट्ठदोसा वियसंति सगमे कहाणुबंधा कमलायरा इव ॥१॥

सो जयउ जेण सुयणा वि(व)दुज्जणा इह विणिम्मिया भुयणे ।
ण तमेण विणा पावंति चंदकिरणा वि परिहाव ॥२॥

दुज्जण-सुयणाण णमो णिच्च पर-कज्ज-वावड-मणाण ।
एक्के भसण-सहाया पर-दोस परम्मुहा अण्णे ॥३॥

अहवा ण को वि दोसो दीसइ सयलम्मि जीय-लोयम्मि ।
सव्वो च्चिय सुयणयणो ज भणिमो तं णिसामेह ॥४॥

सज्जण-संगेण वि दुज्जणस्स ण हु कलुसिमा समोसरइ ।
ससि-मंडल मज्झ-परिट्ठिओ वि कसणो च्चिअ कुरंगो ॥५॥

दुज्जण-संगेण वि सज्जणस्स णास ण होइ सीलस्स ।
तीए सलोणे वि मुहे तह वि हु अहरो महुं सवइ ॥६॥

---

१. श्री महाकवि कोऊहल (८वीं शताब्दी) विरचित-लीलावई (डा० ए० एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित एवं सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई से १९४९ में प्रकाशित) से (गाथा १५–२०) उद्धृत।

(सस्कृतच्छाया)

श्लोक ३० विच्छाययन्नगररमणीमण्डलस्याननानि,
कम्पाययन् गगनकुहर कान्तिज्योत्स्नाजलेन ।
प्रेक्षमाणाना हृदयनिहित निर्दलयश्च दर्पं,
दोलालीलासरलतरलो दृश्यतेऽस्या मुखेन्दु ॥१॥

श्लोक ३१ उच्चेषु गोपुरेषु धवलध्वजपटाडम्बरावलीषु ।
घण्टाभिरुज्ज्वलसुरतरुणिविमानानुसार लभन्ती ॥
प्राकार लङ्घयन्ती करोति रयवशादुन्नमन्ती नमन्ती ।
आयान्ती यान्ती च दोला जनमनोहरण क्रूडनोत्क्रडने ॥२।

श्लोक ३२ रणन्मणिनूपुर झणझणायमानहारच्छट ।
कलक्वणितकिङ्किणीमुखरमेखलाडम्बरम् ॥
विलोलवलयावलीजनितमञ्जुशिञ्जारव
न कस्य मनोमोहन शशिमुख्या हिन्दोलनम् ॥३॥

श्लोक ३३ उपरिस्थितस्तनप्राग्भारपीडित चरणपङ्कजयोर्युगम् ।
आकारयतीव मदन रणन्मणिनूपुररवेण ॥४॥

श्लोक ३४ हिन्दोलनलीलायितमुखर रथचक्रवर्तुल रमणम् ।
किलकिलायतीव सहर्षं काञ्चीमणिकिङ्किणी रवेण ॥५॥

श्लोक ३५ तारान्दोलनलीलासरद्सरिन्छलेनास्या हार ।
विस्रोतीव कुसुमायुधनरपते कीर्तिवल्लय ॥६॥

श्लोक ३७ ताटङ्कयुग गण्डयोर्वहलघुसृणयोर्घटनलीलाभि ।
ददातीव दोलान्दोलनरेखा गणनकौतुकेन ॥७॥

श्लोक ३९ दोलारसाविच्छेद कथमपि मा भवत्विति पततीव ।
पृष्ठे वेणिदण्डो मन्मथचर्मयष्टिकायमान ॥८।

५. दोलालीला[1]

द्वि॰ जव॰

श्लोक ३० विच्छाअन्तो णअररमणीमण्डलस्साणणाइं
विच्छोलन्तो गअणकुहरं कन्तिवोण्हाजलेण ।
पेच्छन्तीण हिअअणिहिअं णिद्दलन्तो,अ दप्पं,
दोलालीलासरलतरलो दीसए से मुहेन्दू ॥१॥

श्लोक ३१ उच्चेहिं गोउरेहिं धवलधअवडाडम्वरिल्लावलीहिं,
घण्टाहिं विन्दुरिल्लासुरतरुणिविमाणाणुसार लहन्ती ।
पाआरं लङ्घअन्ती पुणइ रअसा उण्णमन्ती णमन्ती,
एन्ती जन्ती अ दोला जणमणहरणं वुड्डणुव्वुड्डणेहिं ॥२॥

श्लोक ३२ रणन्तमणिणेउर झणझणन्तहारच्छडं,
क्वणक्कणिअकिङ्किणीमुहलमेहलाडम्बरं ।
विलोलवलआवलीजणिअमञ्जुसिञ्जारव,
ण कस्स मणमोहण ससिमुहीअ हिन्दोलणं ॥३॥

श्लोक ३३ उवरिट्ठिअथणपब्भारचम्पिअ चलणपङ्कआण जुअं ।
हक्कारइ व्व मअण रणन्तमणिणेउररवेण ॥४॥

श्लोक ३४ हिन्दोलणलीलाइअमुल्ल रहचक्कचक्कल रमणं ।
किलकिलइ व्व सहरिस मणिकञ्चीकिङ्किणिरवेण ॥५॥

श्लोक ३५ तारन्दोलणहेलासरन्तमरिअच्छल्लेण से हारो ।
निव्भरइ व कुसुमाउहणरवइणो किंचिरलीओ ॥६॥

श्लोक ३७ ताडङ्कजुअं गण्डेसु बहलघुसिणेसु पडणलीलाहिं ।
देइ व दोलन्दोलणरेहाओ गणणकोड्डेण ॥७॥

श्लोक ३९ दोलारअविच्छेओ फट पि मा होहिइ चि पडइ व्व ।
पुट्ठीअ वेणिदण्डो वम्महचम्मट्ठिआअन्तो ॥८॥

---

1. राजशेखर (९०० ई०) विरचित-कर्पूरमञ्जरी (Sten Konow द्वारा सम्पादित तथा मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, नई दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित) से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

अथ मालिकन्दत्त-माल-भारी वनमाली मुसली च व्रजन्तं ।
परिधौत-चरिल-भाण्डवाहं रजकं कमपि पश्यतः राजमार्गे ॥ १ ॥

मृदुहासमनोहराननाभ्यां कुमाराभ्यां वसनानि याचितः सः ।
कुमना धनगर्वदुर्विनीतः कुपित भाषते भोजराजभृत्यः ॥ २ ॥

न खलु संस्मरितुमपि शक्यते यत् तदेतद् जल्पथ डिम्भकौ निमेवम् ।
ननु खादति तर्जितोऽपि यः स स्पृष्टः किं न करोति कृष्णभोगी ॥३॥

न ,परं न लप्स्यत इति ज्ञेय वसनं भोजपतेर्याच्यमानम् ।
नन्वेतदेव युवयो शीर्षे छेदस्यापि हा भविष्यति कारणं जानीयातम्॥४॥

अथ भवतु सहे एकवारमहं युवयोर्बालचापलानि ।
न सहेत नराधिप इमानि यदि स श्रोष्यति वात्सल्यवन्ध्य ॥ ५ ॥

इति स कटु भाषित्वा यदा प्रहसन्नेव गन्तुं प्रवृत्तः ।
सहसा मधुसूदनेन तदा वसनानि हृतानि तस्य कराभ्याम् ॥ ६ ॥

६. रजकस्य औद्धत्यम्[1]

अह मालिअ-दिण्ण-माल-धारी वणमाली, मुसली अ वच्चमाणं।
परिधोअ-वरिल्ल-भंडवाहं रअअं कं पि णिअंति राअमग्गे ॥ १ ॥

मउहास-मणोहराणणेहिं कुमरेहिं वसणाइ जाइदो सो।
कुमणो घण-गव्व-दुव्विणीओ कुविदो भासइ भोअराअ भिच्चो ॥ २ ॥

ण हु संभरिउं पि सक्कए जं तमिणं जपह डिंभआ किमेव्वं।
णणु खादह तज्जिओ वि जो सो छिविओ किं ण कुणेइ कण्हभोई ॥ ३ ॥

णवरं ण लहिस्सइ च्चि णेअं वसणं भोअवइस्स जच्चमाण।
णमिणं चिअ तुम्ह सीस-छेअस्स वि हो होस्सइ कारणं मुणेह ॥ ४ ॥

अह होदु सहेमि एकवारं, छहके तुज्झाण बाल-चावलाई।
ण सहेज्ज णराहिवो इमाइं जइ सो सोच्छिइ वच्छलिज्ज-वंशो ॥ ५ ॥

इअ सो कडु भासिऊण जाहे, पहसंतो च्चिअ वोलिउं पवुत्तो।
सहसा महु-सूअणेण ताहे वसणाइं हरिआइ से करादो ॥ ६ ॥

१. रामपाणिवाद (१७०८ से १७७५ई०) विरचित—कंसवहो (डाक्टर ए० एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित) के द्वितीय सर्ग से उद्धृत।

शौरसेनी प्राकृत

प्रमुख विशेषताएँ[1]

सरलव्यञ्जन-परिवर्तन

त>द, जानाति = जाणादि, लता = लदा, प्रभृति = पहुदि।

>ड, व्यापृतः = वावडो।

थ>ध, कथयति = कधेदि, मन्मथः = मन्मधो (हे० के अनुसार थ को ध विकल्प से होता है।)

भ>ह, भवति = हवदि, भवदि

ह>ध, (विकल्प से) इह = इध, इह; होह (भवथ) = होध, होइ।

संयुक्तव्यञ्जन-परिवर्तन

र्य>य्य, ज्ज; आर्यः = अय्यो, अज्जो, सूर्यः = सुय्यो, सुज्जो।

न्त>न्द, महन्तः = महन्दो, निश्चिन्त = निचिन्दो।

शब्दरूप

ङसि>आदो, आदु (अ से परे ङसि होने पर), वीरात् = वीरादो, वीरादु।

न्>आ (सम्बोधन में सु परे रहते), कञ्चुकिन् = कञ्चुइआ,
पक्ष में तपस्विन् = तवस्सि।

न्>म् = हे राजन् = भो रायं, भो राय।

धातुरूप

तिप्, त>दि, दे (अ से परे होने पर), गच्छति = गच्छदि, गच्छदे।
>दि (अ भिन्न स्वर परे रहते), भवति = भोदि, होदि।

भविष्यत् काल के प्रत्यय—स्सिदि, स्सिन्ति आदि, भविष्यति = भविस्सिदि (आदि)।

---

1. द्रष्टव्य—हेमचन्द्र : प्राकृतव्याकरण ८।४।२६०-२८६ तक एवं वररुचि : प्राकृत-प्रकाश—द्वादश परिच्छेद।

आगम एवं आदेश

ण (आगम), युक्तम् इदम् = जुत्त णिम, जुत्तमिम , एव एतत् = एव णेद एवमेद। (म् से परे इ या ए होने पर विकल्प से ण का आगम होता है)।

इदानीम्>दाणि, किमिदानीं माम् = किं दाणि म।

तावत्>दाव ताव , एतस्यास्तावदेवम् = एदाए दाव एद, एदाए ताव एद।

तस्मात्>ता, तस्माद् यावत् प्रविशामि = ता जाव पविशामि।

पूर्व>पूरव, अपूर्वं नाटकम् = अपुरव नाडयं।

अव्यय सूची (सूचक अर्थों के साथ)

एव>एव, हीमाणहे—विस्मय, निर्वेद, हञ्जे—चेटी को बुलाने क अर्थ मे,

ण>नतु, अम्महे—हर्ष, हीहीं—विदूषक की हसी।

कृदन्त—

क्त्वा>इय दूण (विकल्प से) पठित्वा = पढिय, पढिदूण, पढित्ता।
>अडुअ, कृत्वा = कडुअ पक्षे करिय करिदूण।
(शेष सामान्य प्राकृत के नियमों के अनुसार।)

(संस्कृतच्छाया)

विदूषक.—अन्यमन्य निमन्त्रयतु तावद् भवान्। अरिक्तस्तावदहम्। ननु भणाम्यहमरिक्तक इति। किं भणसि सम्पन्नमशनमशितव्यं भविष्यतीति। अहं पुनर्जानाम्यधिकमधुरस्याम्रस्यायोग्यतया अस्थि न भक्ष्यत इति। किमिदानीं मामुल्लाल्योल्लाल्य भणसि। भणामि व्यापृत इति। किं भणसि दक्षिणा मापका भविष्यन्तीति।

एष वाचा प्रत्याख्यातो हृदयेनानुबध्यमानो गम्यते। अहो अत्याहितम्। अहमपि नाम परस्यामन्त्रणानीति तर्कयामि। योऽहं तत्रभवतश्चारुदत्तस्य गेहेऽहोरात्रपर्याप्तसिद्धैर्नानाविधैर्हिङ्गुविद्धैरुद्गारसुगन्धिभिर्भूत्नेपमात्रप्रतीक्षितैरन्तरान्तरपानीयैरशनप्रकारैश्चित्रकर इव बहुमल्लकै परिवृत आकण्ठमात्रनशित्वा चत्वरवृषभ इव मोदकसार्यै रोमन्थायमानो दिवस क्षिपामि, स एवेदानीमहं तत्रभवतश्चारुदत्तस्य दरिद्रतया सम पारावतो साधारणवृत्तिमुपजीवन् अन्यत्र चरित्वा चरित्वा तस्यावासमेव गच्छामि। अन्यच्चाश्चर्यम्। ममोदरमवस्थाविशेष जानाति। अल्पेनापि तुष्यति। बहुकमप्योदनभर भरिष्यति दीयमानम्, न याचते अदीयमान, न प्रत्याचष्टे। न खल्वहमीदृशेन न सन्तुष्ट।

तत् पष्ठीकृतदेवकार्यस्य तत्रभवतश्चारुदत्तस्य सकाशाद् गृहीतसुमनोन्तरिक्त्वासनम्। यावदस्य पार्श्वपरिवर्त्ती भवामि।

(परिक्रम्यावलोक्य च) एष तत्रभवाँश्चारुदत्त प्रभातचन्द्र इव सकलप्रियदर्शनो यथाविभवेन गृहदेवताभ्यर्चयन्नित एवागच्छति। यावदेनमुपसर्पामि। (निष्क्रान्त.)

७. चक्रवत्परिवर्तन्ते[1]

विदूषक :—अण्णं अण्णं णिमन्तेदु दाव भव। अरित्तओ दाव अहं। ण भणामि अह अरित्तओ त्ति। किं भणासि—सम्पण्णं असणं अण्हिदव्वं भविस्सदि त्ति। अहं पुण जाणामि अहिअमहुरस्स अम्बस्स अजोग्गदाए अण्ठी ण भक्खीअदि त्ति। किं दाणिं मं उल्लालिअ उल्लालिअ भणासि। भणामि वावुदो त्ति। किं भणासि-दक्खिणामासआणि भविस्सदि त्ति।

एसो वाआ पच्चाचक्खिदो हिअएण अणुसन्धीअमाणो गच्छीअदि। अहो अच्चाहिद। अह त्रि णाम परस्स आमन्तआणि त्ति तक्केमि। जो अहं तत्तहोदो चारुदत्तस्स गेहे अहोरत्तपय्यत्तसिद्धेहिं णाणाविधेहिं हिङ्गुविद्धेहिं ओग्गारणसुगन्धेहि भूक्खेवमत्तपडिच्छिदेहिं अन्तरन्तरपाणीएहिं असणप्पआरेहिं चित्तअरो विअ बहुमल्लएहि परिवुदो आमण्ठमत्त अण्हिअ चच्चरवुसहो विअ मोदअसल्लएहि रोमन्थाअमाणो दिवसं खेवेमि, सो एव्व दाणिं अहं तत्तहोदो चारुदत्तस्स दरिद्दिदाए समं पारावदेहि साहारणवुत्तिं उपजीवन्तो अण्णहिं चरिअ चरिअ तस्स आवासं एव्व गच्छामि। अण्णं च अच्छरिअं। मम उदर अवत्थाविसेसं जाणादि। अप्पेणावि तुस्सदि। बहुअ वि ओदणभरं भरिस्सदि दीअमाण, ण आएदि अदीअमाणं, ण पच्चाचिक्खदि। ण खु अहं एरिसेण ण सन्तुट्ठो।

ता सट्ठीकिदेवकय्यस्स तत्तहोदो चारुदत्तस्स कारणादो गहीदो सुमणो अन्तरिज्खवासो अ। जाव से पस्सपरिवत्ती होमि। (परिक्रम्यावलोक्य च) एसो तत्तभवं चारुदत्तो पभादचन्दो विअस करुणप्पिअदंसणो जहाविभवेण गिहदेवदाणि अच्चअन्तो इदो एव्व आअच्छदि। जाव णं उवसप्पामि। (निष्क्रान्त)

१—भास (तृतीय शताब्दी) प्रणीत—चारुदत्त (गणपति मिश्र द्वारा सशोधित एव अनन्तशयन सस्कृत ग्रन्थावली मे १९२२ में प्रकाशित) प्रथम अक (पृ० ८-११) से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

प्रियंवदा—हा धिक् हा धिक्। अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला। (पुरोऽवलोक्य) न खलु यस्मिन्कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगचटुलोत्फुल्लदुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः। कोऽन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभविष्यति।

अनसूया—गच्छ। पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनम्। यावदहमर्घ्योदकमुपकल्पयामि।

प्रियंवदा—तथा। (इति निष्क्रान्ता)

अनसूया—(पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अहो। आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं मे हस्तात् पुष्पभाजनम्। (इति पुष्पोच्चयं रूपयति)

(ततः प्रविशति प्रियंवदा)

प्रियंवदा—सखि! प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति। किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः।

अनसूया—(सस्मितम्) तस्मिन् बह्वेतदपि। कथय।

प्रियंवदा—यदा निवर्तितुं नेच्छति। तदा विज्ञापितो मया। भगवन्। प्रथममिति प्रेक्ष्याविज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षयितव्य इति।

अनसूया—ततस्ततः।

प्रियंवदा—ततः मे वचनमन्यथाभवितुं नार्हति किन्त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाणः स्वयमन्तर्हितः।

अनसूया—शक्यमिदानीमाश्वासितुमस्ति। तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम्। तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति।

प्रियंवदा—सखि। एहि! देवकार्यं तावन्निर्वर्तयावः।

(इति परिक्रामतः)

८. अभिशाप-मर्षणम्[1]

प्रियंवदा—हद्धी हद्धी। अप्पिअं एव्व संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरुहे अव(व)रद्धा सुण्णहिअआ सउन्दला। (पुरोऽवलोक्य) ण हु जस्सि कस्सि पि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो(वो) महेसी। तह सवि(वि)अ वेअचहुलुप्फुल्लदुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो। को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहविस्सदि।

अनसूया—गच्छ। पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं। जाव अहं अग्घोदअं उव(व)कप्पेमि।

प्रियंवदा—तह (इति निष्क्रान्ता)

अनसूया—(पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अम्मो। आवेअक्खलिदाए गईए पब्भट्ठं मे हत्थादो पुप्फभाअणं। (इति पुष्पोच्चयं रूपयति)

प्रियंवदा—(प्रविश्य) सहि। पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि। किम्पि उण साणुक्कोसो किदो।

अनसूया—(सस्मितम्) तस्सिं बहु एदम्पि। कहेहि।

प्रियंवदा—जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि तदा विण्णवि(वि)दो मए। भअवं। पढमं त्ति(ति) पेक्खिअ अविण्णादतव(व)प्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अव(व)राहो मरिसिदव्वो त्ति।

अनसूया—तदो तदो।

प्रियंवदा—तदो मे वअणं अण्णहाभविदु णारिहदि। किन्दु अहिण्णाणाभरणदंसणेण सावो(वो) णिवत्तिस्सदि त्ति मन्तअन्तो सअं अन्तरिहिदो।

अनसूया—सक्क दाणिं अस्ससिदुं अत्थि। तेण राएसिणा सम्पत्थिदेण सणामहेअङ्किअं अङ्गुलीअअं सुमरणीअं त्ति(ति) सअं पिणद्धं। तस्सिं साहीणोवा(वा)आ सउन्दला भविस्सदि।

प्रियंवदा—सहि। एहि। देवकज्जं दाव णिव्वत्तेम्ह।

(इति परिक्रामतः)

१—महाकवि कालिदास (चतुर्थ-शताब्दी) विरचित-अभिज्ञानशाकुन्तलम् (Monier Williams द्वारा सम्पादित तथा आक्सफोर्ड से १८७६ में प्रकाशित) चतुर्थ अंक विष्कम्भ (पृ० १३७-१४०) से उद्धृत।

(सस्कृतच्छाया)

चेटी—कथमद्यापि आर्या न विबुध्यते। भवतु प्रविश्य प्रबोधयिष्यामि।

(इति नाट्येन परिक्रामति। तत प्रविशत्याच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना)

चेटी—उत्तिष्ठतु उत्तिष्ठतु आर्या प्रभात सवृत्तम्।

वसन्तसेना—(प्रतिबुध्य) कथ रात्रिरेव प्रभात सवृत्तम् ?

चेटी—अस्माकमेतत्प्रभातमार्याया पुना रात्रिरेव।

वसन्तसेना—चेटि। क्व युष्माक द्यूतकर ?

चेटी—आर्ये। वर्धमानक समादिश्य पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान गत आर्यचारुदत्त।

वसन्तसेना—किं समादिश्य ?

चेटी—योजय रात्रावेव प्रवहण वसन्तसेना गच्छत्विति।

वसन्तसेना—चेटि। क्व मया ग तव्यम् ?

चेटी—आर्ये। यत्र चारुदत्त।

वसन्तसेना—(चेटीं परिष्वज्य) चेटि। सुष्ठु न निध्यातो रात्रौ। तदद्य प्रत्यक्ष प्रेक्षिष्ये। चेटि। किं प्रविष्टाहमभ्यन्तरचतुशालकम् ?

चेटी—न केवलमभ्यन्तरचतु शालक सर्वजनस्य हृदयमपि प्रविष्टा।

वसन्तसेना—अपि सन्तप्यते चारुदत्तस्य परिजन ?

चेटी—सन्तप्स्यते।

वसन्तसेना—कदा ?

चेटी—यदा आर्या गमिष्यति।

वसन्तसेना—तदा मया प्रथम सन्तप्तव्यम्। चेटि। गृहाणेमा रत्नावलीं मम भगिन्यै आर्याधूतायै गत्वा समर्पय वक्तव्य च—अह श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी तदा युष्माकमपि। तदेषा तवैव कण्ठाभरण भवतु रत्नावली।

चेटी—कोपिष्यति चारुदत्त आर्यायै तावत्।

वसन्तसेना—गच्छ न कोपिष्यति।

चेटी—(गृहीत्वा) यदाज्ञापयसि। (इति निष्क्रान्ता)

९. अभिसारः[1]

चेटी—कथं अज्ज वि(वि) अज्जुआ ण विबुज्झदि। भोदु पविसिअ पबोधइस्सं।

(इति नाट्येन परिक्रमति। ततः प्रविशत्याच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना)

चेटी—उत्थेदु उत्थेदु अज्जुआ पभादं संवुत्तं।

वसन्तसेना—(प्रतिबुध्य) कधं रत्ति ज्जेव्व पभादं संवुत्तं।

चेटी—अम्हाणं एसो पभादो अज्जुआए उण रत्ति ज्जेव्व।

वसन्तसेना—हञ्जे कहिं तुम्हाणं जूदिअरो ?

चेटी—अज्जुए वड्ढमाणअं समादिसिअ पुप्फकरण्डअं जिण्णुज्जाणं गदो अज्जचारुदत्तो।

वसन्तसेना—किं समादिसिअ ?

चेटी—जोएहि रादीए ज्जेव्व पवहणं वसन्तसेणा गच्छदु त्ति।

वसन्तसेना—हञ्जे कहिं मए गन्तव्वं ?

चेटी—अज्जुए जहिं चारुदत्तो।

वसन्तसेना—(चेटीं परिष्वज्य) हञ्जे सुट्ठु ण णिज्झाइदो रादीए ता अज्ज पच्चक्खं पेक्खिस्सं। हञ्जे किं पविट्ठा अहं अब्भन्तर-चतुस्सालअं ?

चेटी—ण केवलं अब्भन्तरचतुस्सालअं सव्वजणस्स हिअअं पि पविट्ठा।

वसन्तसेना—अवि(वि) सन्तप्पदि चारुदत्तस्स परिअणो ?

चेटी—सन्तप्पिस्सदि।

वसन्तसेना—कदा ?

चेटी—जदो अज्जुआ गमिस्सदि।

वसन्तसेना—तदो मए पढमं सन्तप्पिदव्वं। हञ्जे गेण्ह एदं रअणावलिं। मम बहिणिआए अज्जाधूदाए गदुअ समप्पेहि, भणिदव्वं च। अहं सिरीचारुदत्तस्स गुणणिज्जिदा दासी तदा तुम्हाणं पि। ता एसा तुह ज्जेव्व कण्ठाहरणं होदु रअणावली।

चेटी—कुप्पिस्सदि चारुदत्तो अज्जुआए दाव।

वसन्तसेना—गच्छ ण कुप्पिस्सदि।

चेटी—(गृहीत्वा) जं आणावे(वे)सि।

(इति निष्क्रान्ता)

---

१. श्री शूद्रक (५वीं शताब्दी) प्रणीत—मृच्छकटिक (Stenzler द्वारा सम्पादित तथा Bonnae से १८४७ ई० में प्रकाशित) षष्ठम अंक (पृ० ९३-९४) से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

पुरुष—आर्याः ! अपि नामास्मिन्नुद्देशे सारथिद्वितीयो दृष्टो युष्माभिर्महाराजदुर्योधनो न वेति। कथं न कोऽपि मन्त्रयते। भवत्वेतेषां बद्धपरिकराणां पुरुषाणां समूहो दृश्यत इत्यत्र गत्वा प्रक्ष्यामि। (विलोक्य) कथमेते स्वस्वामिनो गाढप्रहाराहतस्य घनसन्नाहजालदुर्भेद्यमुखैः कङ्कपत्रैर्हृदयाच्छल्यान्युद्धरन्ति। तत्खल्वेते न जानन्ति। भवत्वन्यतो विचेष्यामि। इमे खलु परे प्रभूततराः संकलिता वीरमानुषाः। अत्र गत्वा प्रक्ष्यामि। (उपगम्य) अहो जानीथ कस्मिन्नुद्देशे कुरुनाथो वर्तत इति। कथमेतेऽपि मां दृष्ट्वा अधिकतरं रुदन्ति। (दृष्ट्वा) तत्र खल्वेतेऽपि जानन्ति। हा दुष्करं खल्वत्र वर्तते। एषा वीरमाता समरविनिहतं पुत्रकं श्रुत्वा रक्तांशुकनिवसनया वध्वा सहानुम्रियते। साधु वीरमातः साधु। अन्यस्मिन्नपि जन्मान्तरेऽनिहतपुत्रा भविष्यसि। भवत्वन्यतो विचेष्यामि। (अन्यतो विलोक्य) अयमपरो बहुप्रहारनिहतकायोऽकृतव्रणप्रतीकार एव योधसमूहस्तिष्ठति। इम शून्यासनं तुरंगममुपालभ्य रोदिति। नूनमेतेषामत्रैव स्वामी व्यापादित इति। तत्र खल्वेतेऽपि जानन्ति। भवत्वन्यतो गत्वा प्रक्ष्यामि। (सर्वतो विलोक्य) यथा सर्व एवावस्थानुरूपं व्यसनमनुभवन् भागधेयविमुखतया पर्याकुलो जनः। तत्कमत्र प्रक्ष्यामि क्व योपालप्स्ये। भवतु स्वयमेवात्र विज्ञास्यामि। (परिक्रम्य) भवतु दैवमेवेदानीमुपालप्स्ये। अहो दैव! एकादशानामक्षौहिणीनां नाथो ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य भर्ता गाङ्गेयद्रोणाङ्गराजशल्यकृपकृतवर्माश्वत्थामप्रमुखस्य राजचक्रस्य सकलपृथिवीमण्डलैकनाथो महाराजदुर्योधनोऽप्यन्विष्यते, न जाने कस्मिन्नुद्देशे स वर्तत इति।

१०. समराङ्गणम्[1]

पुरुष.—अज्जा ! अवि(वि)णाम इमस्सि उद्देसे सारहिदुदीओ दिट्ठो तुम्हेहिं महाराअदुज्जोहणो ण वेत्ति । कह ण को वि (वि) मन्तेदि । होदु, एदाण बद्धपरिअराणं पुरिसाण समूहो दीसइ त्ति एत्थ गदुअ पुच्छिस्सं । (विलोक्य) कहं एदे सस्सामिणो गाढप्पहाराहदस्स घणसणाहजाल्दुब्भेज्जमुहेहिं कङ्कब(व)त्तेहिं हिअआदो सल्लाइं उद्धरन्ति । ता खु एदे ण जाणन्ति । होदु, अण्णदो विचिणइस्स । इमे क्खु अव(व)रे पहददरा संकलिदा वीरमाणुसा । एत्थ गदुअ पुच्छिस्स (उपगम्य) हहो जाणह कस्सिं उद्देसे कुरुणाहो वट्टइ त्ति । कह एदे नि(वि) म देक्खिअ अहिअदर रोअन्ति । (दृष्ट्वा) ता ण हु एदे वि(वि) जाणन्ति । हा दुक्करं क्खु एत्थ वट्टइ । एसा वीरमादा समरविणिहद पुत्तअं सुणिअ रत्तंसुअणिवसणाए वहूए सह अणुमरदि । (सश्लाघम) साहु वीरमादे साहु, अण्णस्सि वि(वि) जम्मन्तरे अणिहदपुत्तआ हुविस्ससि ! होदु अण्णदो विचिणइस्स ।

(अन्यतो विलोक्य) अअ अव(व)रो बहुप्पहारणिहदकाओ अकिदव्वणप्पडीआरो एव्व जोहसमूहो चिट्ठइ । इम सुण्णासण तुलगमं उवा(वा)लहिअ रोइदि । णूण एदाण एत्थ एव्व सामी वावा(वा)दिदो त्ति । ता ण हु एदे नि(वि) जाणन्ति । होदु, अण्णदो गदुअ पुच्छिस्स । (सर्वतो विलोक्य) कह सव्वो एव्व अवत्थाणुरूब(व) विसणं अणुहवन्तो भाअनेअविमुहदाए पज्जाउलो जणो । ता क एत्थ पुच्छिस्स क वा उवा(वा)लहिस्स । भोदु सअ एव्व एत्थ विआणिस्स । (परिक्रम्य) देव्व एव्व दाणिं उवा(वा)लहिस्सं । हंहो देव्व ! एआदसाण अक्खोहिणीण णाहो जेट्ठो भादुसअस्स भत्ता गङ्गेयद्रोणअङ्गराअसल्लकिव(व)किदवम्मअस्सत्थामप्पमुहस्स राअचक्कस्स सअलपहुवीमण्डलेक्कणाहो महाराअदुज्जोहणो वि(वि)अण्णेसीअदि, ण जाणे कस्सि उद्देसे सो वट्टइ त्ति ।

१—श्री भट्टनारायण (८वीं शताब्दी) प्रणीत-वेणीसंहार (Julius Grill द्वारा सम्पादित एव Leipzig से १८७१ में प्रकाशित) के चतुर्थ अंक (पृष्ठ ५८-५९) से उद्धृत ।

(संस्कृतच्छाया)

राजा—सत्यं विचक्षणा विचक्षणा चतुरत्वेनोक्तीनां विचित्रतया रीतीनाम्। तत्किमन्यत्। कविचूडामणित्वे स्थिता एषा।

विदूषकः—(सक्रोधम्) तदज्वेव किं न भण्यते अत्युत्तमा विचक्षणा काव्येऽस्यधम कपिञ्जलो ब्राह्मण इति।

विचक्षणा—आर्य मा क्रुध्य! काव्यमेव ते कवित्वं पिशुनयति। यतो कान्तारञ्जननिन्दनीयेऽप्यर्थे सुकुमारा ते वाणी लम्बस्तन्या इवैकावली तुन्दिलाया इव कञ्चुलिका काणाया इव कज्जलशलाका न सुष्ठुतर रमणीया।

विदूषकः—तव पुना रमणीयेऽप्यर्थे न सुन्दरा शब्दावली। कनककटिसूत्र इव लोहकिंकिणीमाला, प्रतिपट्ट इव त्रसरविरचना, गौराङ्ग्या इव चन्दनचर्चा, न चङ्गत्वं अवलम्बते। तथापि त्वं वर्ण्यसे।

विचक्षणा—आर्य! मा क्रुध्य। का युष्माभिः सह प्रतिस्पर्धा? यतस्त्वं नाराच इव निरक्षरोऽपि रत्नतुलायां नियुज्यसे। अहं पुनस्तुलेव लब्धाक्षरापि न सुवर्णतोलने नियुज्ये।

विदूषकः—एवं मां हसन्त्यास्तव वामं दक्षिणं च युधिष्ठिरज्येष्ठभ्रातृ-नामधेयमङ्गं झटिति उत्पाटयिष्यामि।

विचक्षणा—अहमप्युत्तराफाल्गुनीपुरःसरनक्षत्रनामधेयमङ्गं तव झटिति खण्डयिष्यामि।

राजा—वयस्य! मैवं भण। कवित्वे स्थितैषा।

विदूषकः—(सक्रोधम्) तदज्वेव किं न भण्यते अस्माकं चेटिका हरिवृद्धनन्दिवृद्धपोट्टिशहालप्रभृतीनामपि पुरतः सुकविरिति? (इति परिक्रामति)

११. परिहासविजल्पितम्[1]

राजा—सच्चं विअक्खणा विअक्खणा चतुरत्तणेण उत्तीए विचित्तदाए रीदीणं। ता किं अण्ण कइचूडामणित्तणे ठिदा एसा।

विदूषक—(सक्रोधम्) ता उज्जुअ जेव किं ण भणीअदि अच्चुत्तमा विअक्खणा कव्वम्मि अच्चहमो कविञ्जलो बम्हणो त्ति।

विचक्षणा—अज्ज मा कुप्प। कव्व जेव दे कइत्तणं पिसुणेदि। जदो कन्तारत्तणणिन्दणिज्जे वि अत्थे सुउमारा दे वाणी लम्बत्थणीए विअ एकावली तुन्दिलाए विअ कञ्चुलिआ काणाए विअ कज्जलसलाआ ण सुट्ठुदर रमणिज्जा।

विदूषक—तुज्झ उण रमणिज्जे वि अत्थे ण सुन्दरा सद्दावली। कणअकडिसुत्तए विअ लोहकिङ्किणीमाला पडिवट्टए विअ तसरविरअणा गोरङ्गीए विअ चन्दणचच्चा ण चङ्गत्तणं अवलम्बेदि। तधा वि तुम वण्णीअसि।

विचक्षणा—अज्ज मा कुप्प। का तुम्हेहिं सम पाडिसिद्धी। जदो तुम णाराओ विअ णिरक्खरो वि रदणतुलाए णिउञ्जीअसि। अह उण तुला विअ लद्धक्खरा वि ण सुवण्णतुलणे णिउञ्जीआमि।

विदूषक—एव्वं म हसन्तीए तुह वाम दक्खिण च जुहिट्ठिरजेट्ठभादरणामहेअं अङ्ग तडत्ति उप्पाडइस्स।

विचक्षणा—अह पि उत्तरफग्गुणीपुरस्सरणक्खत्तणामहेअं अङ्गं तुह तडत्ति खण्डिस्स।

राजा—वअस्स मा एव्व भण। कइत्तणे ठिदा एसा।

विदूषक—(सक्रोधम्) ता उज्जुअ जेव किं ण भणीअदि अम्हाणं चेडिआ हरिउड्डणन्दिउड्डपोट्टिसहालप्पहुदीण पि पुरदो सुकइ त्ति।

(इति परिक्रामति)

---

१ महाकवि राजशेखर (नवीं शताब्दी) विरचित—कर्पूरमञ्जरी (Sten Konow द्वारा सम्पादित तथा मोतीलाल बनारसीदास बगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-६ द्वारा प्रकाशित) के प्रथम जवनिका पृ० १६-१९ से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

विचक्षण—(विहस्य) तत्र गच्छ यत्र मे प्रथमशाटिका गता।

विदूषकः—(वलितग्रीवम्) त्वं पुनस्तत्र गच्छ यत्र मे मातुः प्रथमा दन्तावली गता। ईदृशस्य राजकुलस्य भद्रं भवतु, यत्र चेटिका ब्राह्मणेन समं समशीर्षिकया दृश्यते, मदिरा पञ्चगव्यं चैकस्मिन् भाण्डे क्रियते, काचं माणिक्यं च सममाभरणे प्रयुज्यते।

विचक्षणा—इह राजकुले तव भवतु कण्ठस्थितं यद्गवांस्त्रिलोचनः शीर्षे समुद्वहति। तेन च ते मुखं चूर्णयतां येनाशोकतरुर्दोहदं लभते।

विदूषकः—आः दास्याः पुत्रि! टेण्टाकराले! कोससदचट्टणि! रथ्यालोट्टणि! एवं मां भणसि। तन्मम महाब्राह्मणस्य वचनेन तत्त्वं लभ यत्फाल्गुनसमये शोभाञ्जनो दोहदं लभते यच्च पामरेभ्यो बलीवर्दो लभते।

विचक्षणा—अहं पुनस्तवैवं भणतो नूपुरस्येव पादलग्नस्य पादेन मुखं चूर्णयिष्यामि। अन्यच्च उत्तराषाढानक्षत्रनामधेयमङ्गयुगलमुत्पाट्य क्षेप्स्यामि।

विदूषकः - (सक्रोधं परिक्रामति जवनिकान्तरे किंचिदुच्चैः) ईदृशं राजकुलं दूरे वन्द्यते, यत्र दासी ब्राह्मणेन समं प्रतिस्पर्धां करोति। तदद्यप्रभृति निजवसुन्धराब्राह्मण्याश्चरणशुश्रुपुर्भूत्वा गृह एव स्थास्यामि।

(सर्वे हसन्ति)

१२. कपट प्रतिस्पर्द्धा[1]

विचक्षणा —(विहस्य) तहिं गच्छ जहिं मे पढमसाहुलिआ गदा ।

विदूषक —(वलितग्रीवम्) तुम उण तहिं गच्छ जहिं मे मादाए पढमा दन्तावली गदा । ईदिसस्स राअउलस्स भद्दं भोदु जहिं चेडिआ बम्हणेण समसीसिआए दीसदि मइरा पञ्चगव्वं च एक्कस्सिं भण्डए करीअदि कच्च माणिक्कं च सम आहरणे पउञ्जीअदि ।

विचक्षणा—इध राअउले तु दे भोदु कण्ठट्ठिद ज भअवं तिलोअणो सीसे समुव्वहदि तेण अ दे मुहं चूरीअदु जेण असोअतरू दोहलं लहदि ।

विदूषक—आ दासीए पुत्ति टेण्टाकराले कोससदचट्टिणि रच्छालोट्टणि एव मे भणासि । ता मह महाबम्हणस्स वअणेण ण तुमं लह णं फग्गुणसमए सोहञ्जणो दोहलं लहदि ण च पामराहिंतो गल्लिइल्लो लहदि ।

विचक्षणा—अहं उण तुए एवं भणन्तस्स णेउरस्स विअ पाअलग्गस्स पाएण मुहं चूरइस्सं । अण्णं च उत्तरासाढापुरस्सरणक्खत्तणामहेअं अक्खिजुअलं उप्पाडिअ घल्लिस्सं ।

विदूषक —(सक्रोधं परिक्रामति जवनिकान्तरे स्थित्वा) ईदिसं राअउलं दूरे वन्दीअदि जहिं दासी बम्हणेण सम पाडिसिद्धिं करेदि । ता अज्जप्पहुदि णिअबम्हणीए चलणसुस्सूसओ भविअ घरे ज्जेव चिट्ठिस्सं ।

(सर्वे हसन्ति)

---

१ महाकवि राजशेखर विरचित एवं Sten Konow द्वारा सम्पादित कर्पूरमंजरी के पृ० १९–२२ से उद्धृत ।

मागधी प्राकृत

प्रमुख विशेषताएँ

सरल-व्यञ्जन-परिवर्तन

ज>य, जनपद = यणवदे, जानाति = याणदि।
र>ल, पुरुष = पुलिशे, राक्षस = लस्कशे।
ष, स>श, माष = माशे, हंस = हशे।

संयुक्त-व्यञ्जन-परिवर्तन

क्ष>स्क, राक्षस = लस्कशे, दक्ष = दस्के।
ज्ञ, ञ्ज, ण्य, न्य>ञ्ञ, प्रज्ञाविशाल = पञ्ञाविशाले, अञ्जलि = अञ्ञली,
पुण्यवान् = पुञ्ञवन्ते, अभिमन्यु = अहिमञ्ञू।
च्छ>श्च, गच्छ = गश्च, पृच्छति = पुश्चदि।
द्य>य्य, मद्य = मय्य।
ट्ट, ष्ठ>स्ट, भट्टारिका = भस्टालिका, सुष्ठु = शुस्टु।
र्य, र्ज>य्य, कार्यम् = कय्ये, दुर्जन = दुय्यणे।
स्थ, र्थ>स्त उपस्थित = उवस्तिदे, सार्थवाह = शस्तवाहे।
ष, स् + व्यञ्जन = स् + व्यञ्जन, कष्टम् = कस्ट, विष्णु = विस्नुं, विस्मय
= विस्मये।

शब्दरूप

अ + सु (विभक्ति प्रत्यय)>ए + सु, पुरुष = पुलिशे, मेष = मेशे।
ङस्> आह, भगदत्तशोणितस्य कुम्भ = भगदत्तशोणिदाह कुम्भे।
आम्> आहँ, कर्मणा = कम्माहँ, युष्माकम् = तुम्हाहँ।

आदेश

अहम्>हके, हगे, अहके, अहं भणामि = हके, हगे, अहके भणामि।
तिष्ठ>चिष्ठ, तिष्ठ रे = चिष्ठ ले, तिष्ठति = चिष्ठदि।

द्रष्टव्य—हेमचन्द्र कृत—प्राकृत व्याकरण ८।४।२८७—३०२ तक एवं वररुचि कृत—प्राकृत प्रकाश—एकादश परिच्छेद।

शृगाल>शिआल, शिआलक, शृगाल आगच्छति = शिआले, शिआलके आगच्छदि।

हृदय>हडक, हृदये आदरो मम = हडक्के आल्ले मम।

कृदन्त

क्त>ड (केवल डुकृञ्, मृङ् गम्लृ धातु से क्त को), कृत = कडे, मृत = मडे, गत = गडे।

क्त>दु, हसित = हशिदु, हशिदे।

क्त्वा>दाणि, सोढ्वा गत = शहिदाणि गडे, कृत्वा आगत = करिदाणि आअडे।

(शेष नियम शौरसेनी प्राकृत के समान)

(संस्कृतच्छाया)

(ततः प्रविशति नागरिकः श्यालः पश्चाद्बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च)

रक्षिणौ— (ताडयित्वा) अरे कुम्भीलक ! कथय । कुत्र त्वयैतन्मणि-बन्धनोत्कीर्णनामधेयं राजकीयमङ्गुलीयकं समासादितम् ?

पुरुष —(भीति नाटितकेन) प्रसीदन्तु भावमिश्राः । अहं नेदृशकर्मकारी ।

प्रथम —किं खलु शोभनो ब्राह्मण इति कृत्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः ?

पुरुष —शृणुतेदानीम् । अहं शक्रावताराभ्यन्तरवासी धीवरः ।

द्वितीय —पाटच्चर ! किमस्माभिर्जातिः पृष्टा ?

श्याल —सूचक ! कथयतु सर्वमनुक्रमेण । मैनमन्तरा प्रतिबध्नीतम् ।

उभौ— यदावुत्त आज्ञापयति । कथय ।

पुरुष —अहं जालोद्गारादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि ।

श्याल —(विहस्य) विशुद्ध इदानीमाजीवः ।

पुरुष —भर्त्तः ! मैवं भण ।

सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः ॥

श्याल —ततस्ततः

पुरुष —एकस्मिन्दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो यावत् । तस्योदराभ्यन्तरे एतद्रत्नभासुरमङ्गुलीयकं दृष्टम् । पश्चादहमस्य विक्रयाय दर्शयन्गृहीतो भावमिश्रैः । मारयत वा मुञ्चत वा । अयमस्यागमवृत्तान्तः ।

१३ प्रत्ययभिज्ञानकम्[1]

(तत प्रविशति नागरिक श्याल पश्चाद्बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च)

रक्षिणौ—(ताडयित्वा) अले कुम्भिलआ । कहेहि, कहिं तुए एशे मणिबन्धणुक्किण्णणामहेए लाअकीए अङ्गुलीअए शमाशादिए ?

पुरुष —(भीति नाटितकेन) पशीदन्ते(न्तु) भावमिश्शे(श्शा) । अहके ण ईदिशकम्मकाली ।

प्रथम —किं खु शोहणे बम्हणे त्ति कलिअ लण्णा पडिग्गहे दिण्णे ?

पुरुष —शुणुह दाणिं । अहके शक्कावदालब्भन्तलवाशी धीवले ।

द्वितीय —पाडच्चला । किं अम्हेहिं जादी पुच्छिदा ?

श्याल[2]—सूअअ ! कहेदु सव्व अणुक्कमेण । मा ण अन्तरा पडिबन्धह ।

उभौ—य आवु(वु)त्ते आणवे(वे)दि । कहेहि ।

पुरुष —अहके जालुग्गालादीहिं मच्छबन्धणोवा(वा)एहिं कुडुम्बभलण कलेमि ।

श्याल —(विहस्य) विशुद्धो दाणिं आजीवो ।

पुरुष —भट्टा मा एव्व भण ।

शहजे किल जे विणिन्दिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए ।
पशुमालणकम्मदालुणे अणुकम्पामिदु एव्व शोत्तिए ॥

श्याल —तदो तदो ।

पुरुष —एक्कश्शिं दिअशे खण्डशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे जाव ।
तश्श उदलब्भन्तले एद लदणभाशुल अङ्गुलीअअं देक्खिअ ।
पच्छा अहके शे विक्कआअ दशअन्ते गहिदे भावमिश्शेहिं ।
मालेह वा, मुञ्चेह वा, अअ शे आअमवुत्तन्ते ।

---

१ महाकवि कालिदास (४ शताब्दी) विरचित–अभिज्ञानशाकुन्तल (Monier Williams द्वारा सम्पादित एव आक्सफोर्ड से १८७६ में प्रकाशित) चतुर्थ अंक के प्रवेशक (पृ० २१७ २२१) से उद्धृत ।

२ श्याल द्वारा शौरसेनी भाषा का प्रयोग किया गया है ।

(संस्कृतच्छाया)

(ततः प्रविशत्यार्द्रचीवरहस्तो भिक्षुः)

भिक्षुः—अज्ञाः ! कुरुत धर्मसञ्चयम् ।

संयच्छत निजोदरं नित्यं जागृत ध्यानपटहेन ।
विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसञ्चितं धर्मम् ।।
अपि च—

अनित्यतया प्रेक्ष्य केवलं तावद्धर्माणां शरणमस्मि ।
पञ्चजना येन मारिता, स्त्रियं मारयित्वा ग्रामो रक्षित ।
अबलश्च चाण्डालो मारितोऽवश्यं स नरः स्वर्गं गाहते ।।
शिरो मुण्डितं तुण्डं मुण्डितं चित्त न मुण्डित किं मुण्डितम् ।
यस्य पुनश्च चित्तं मुण्डितं साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम् ।।

गृहीतकषायोदकमेतच्चीवरं, यावदेतत् राष्ट्रियश्यालकस्योद्याने प्रविश्य पुष्करिण्यां प्रक्षाल्य लघु लघु अपक्रमिष्यामि ।

(इति परिक्रम्य तथा करोति)

(नेपथ्ये) तिष्ठ रे दुष्टश्रमणक ! तिष्ठ तिष्ठ ।

भिक्षु—(दृष्ट्वा सभयम्) ही अविद ही मानवाः । एष स राजश्यालसंस्थानक आगत. । एकेन भिक्षुणा अपराधे कृते, अन्यमपि यत्र यत्र भिक्षु पश्यति तत्र तत्र गामिव नासां विद्ध्वा अपवाहयति । तत् कुत्राशरण शरणं गमिष्यामि ? अथवा भट्टारक एव बुद्धो मे शरणम् ।

(प्रविश्य सखड्गेन विटेन सह)

शकार—तिष्ठ रे दुष्ट श्रमणक ! तिष्ठ । आपानकमध्यप्रविष्टस्येव रक्तमूलकस्य शीर्षं ते मोटयिष्यामि ।

(इति ताडयति)

१४. घट्टकुट्यां प्रभातम्[1]

(ततः प्रविशत्यार्द्रचीवरहस्तो भिक्षुः)

भिक्षुः—अज्ञा ! कलेध धम्मशञ्चअं ।

शञ्जम्मध णिअपोटं णिच्चं जग्गेध झाणपडहेण ।
विशमा इन्दियचोला हलन्ति चिलशञ्चिदं धम्मं ॥

अनि(वि)अ—

अणिच्चदाए पेक्खिअ णवल दाव धम्माण शलण म्हि ।
पञ्चज्जण जेण मालिदा इत्थिअ मालिअ ना(गा)म लक्खिदे ।
अब(ब)ले अ चण्डाल मालिदे अवशं शे णल शग्ग गाहदि ॥
शिल मुण्डिदे तुण्ड मुण्डिदे चित्त ण मुण्डिदे कीश मुण्डिदे ।
जाह उण अ चित्त मुण्टिदे, शाहु, शुस्ट(स्ठु) शिल ताह मुण्डिदे ॥

गिहिदकशाओदए एशे चीवले, जाव एदं लस्टि(स्टि)अशालकाह केलके उज्जाणे पविशिअ पोक्खलिणीए पक्खालिअ लहुं लहुं अन(व)क्कमिश्शं ।

(परिक्रम्य तथा करोति)

(नेपथ्ये) चिश्ट(ष्ठ) ले दुश्ट(स्ट) शमणका । चिश्ट(ष्ठ) चिश्ट(ष्ठ) ।

भिक्षु—(दृष्ट्वा सभयम्) ही अविद् ही माणहे । एशे शे लाअशा-लश्शण्ठाणे आअदे एक्केण भिक्खुणा अन(व)लाहे किदे अण्णं पि जहिं जहिं भिक्खु पेक्खदि तहिं तहिं गोण ब्व णाशं भिन्दिअ ओवाहेदि । ता कहिं अशलणे शलणं गमिश्शं ! अधवा भश्टा(स्टा)लके ज्जेव्व बुद्धे मे शलणे ।

(प्रविश्य सखड्गेन विटेन सह)

शकार—चिश्ट(ष्ठ) ले दुश्ट(स्ट) शमणका चिश्ट(ष्ठ) चिश्ट(ष्ठ) । आवा(वा) णअमज्झपविश्ट(स्ट)श्श विअ लत्तमूलअश्श शीशं ते मोडइश्शं ।

(इति ताडयति)

---

१ शूद्रक (५ वीं शताब्दी) विरचित-मृच्छकटिक (Stenzler द्वारा सम्पादित तथा Bonnne से १८४७ ई० में प्रकाशित) के अष्टम अंक (पृ० ११२-११३) से उद्धृत ।

(संस्कृतच्छाया)

शकारः—आत्मपरित्राणे भावो गतोऽदर्शनम्। चेटमपि प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायां निगडपूरितं कृत्वा स्थापयिष्यामि। एवं मन्त्रो रक्षितो भवति। तद् गच्छामि, अथवा पश्यामि एतां, किमेषा मृता? अथवा पुनरपि मारयिष्यामि। (अवलोक्य) कथं सुमृता। भवतु एतेन प्रावारकेण प्रच्छादयाम्येनाम्। अथवा नामाङ्कित एषः, तत्कोऽपि आर्यपुरुषः प्रत्यभिज्ञास्यति। भवतु एतेन वातालीपुञ्जितेन शुष्कपर्णपुटेन प्रच्छादयामि। (तथा कृत्वा विचिन्त्य) भवतु एवं तावत्, साम्प्रतमधिकरणं गत्वा व्यवहारं लेखयामि, यथा अर्थस्य कारणात् सार्थवाहपुत्रचारुदत्तेन मदीयं पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं प्रविश्य वसन्तसेना व्यापादितेति।

चारुदत्तविनाशाय करोमि कपटं नवम्।
नगर्यां विशुद्धायां पशुघातमिव दारुणम्।

(इति निष्क्रम्य दृष्ट्वा सभयम्)

अविदमादिके। येन येन गच्छामि मार्गेण तेनैवैष दुष्टश्रमणको गृहीतकषायोदकं चीवरं गृहीत्वा आगच्छति। एष मया नसि छित्त्वा वाहितः कृतवैरः कदापि मां प्रेक्ष्यैतेन मारितेति प्रकाशयिष्यति। तत्कथं गच्छामि। (अवलोक्य) भवतु, एतमर्धपतितं प्राकारखण्डमुल्लङ्घ्य गच्छामि।

एषोऽहं त्वरितत्वरितो लङ्कानगर्यां गगने गच्छन्।
भूम्यां पाताले हनूमच्छिखर इव महेन्द्रः॥

(इति निष्क्रान्तः)

१५. दुर्वृत्तवृत्तम्[1]

शकारः—अत्तपलिचाणे भावे गदे अदंशणं चेडे वि(वि) पाशादबालग्गपदोलिआए णिअलपूलिदं कदुअ थाव(व)इश्शं। एव्वं मन्ते लक्खिदे भोदि। ता गच्छामि, अधवा पेक्खामि एदं कि एशा मला आदु पुणो वि(वि) मालइश्श। (अवलोक्य) कधं शुमला। भोदु एदिणा पावालेण पच्छादेमि ण। अधवा णामक्खिदे एशे ता के वि(वि) अज्जपुलिशे पच्चहिजाणेदि। भोदु एदिणा वादालीपुञ्जिदेण शुक्खपण्णपुडेण पच्छादेमि। (तथा कृत्वा विचिन्त्य) भोदु एव्वं दाव। शम्पदं अधिअलणं गच्छिअ ववहालं लिहावे(वे)मि। जधा अत्थश्श कालणादो शट्टवाहपुत्तचालुदत्ताकेण मम केलकं पुप्फकलण्डकं जिण्णुज्जाणं पवेशिअ वशन्तशेणिआ वावा(वा)दितेत्ति।

चालुदत्तविणाशाय कलेमि कव(व)ड णव।
णअलीए विशुद्धाए पशुघादं व्व दालुणं॥
भोदु गच्छामि (इति निष्क्रम्य दृष्ट्वा सभयम्)

अविद मादिके! जेण जेण गच्छामि मग्गेण तेण ज्जेव्व एशे दुश्ट(स्ट)शमणके गहिदकशाओदकं चीवलं गेण्हिअ आगच्छदि। एशे मए णश्शिअवाहिदे कदवेले कदावि(वि) मं पेक्खिअ एदेण मालिद त्ति पआशइश्शदि। ता कधं गच्छामि (अवलोक्य) भोदु एद अद्धपडिद पाआरखण्ड उल्लङ्घिअ गच्छामि।

एशे म्हि तुलिदतुलिदे लङ्काणअलीए गअण गच्छन्ते।
भूमीए पाआले हणूमशिहले व्विअ महेन्दे॥

(इति निष्क्रान्त)

---

१. शूद्रक द्वारा विरचित-मृच्छकटिक (Stenzler द्वारा सम्पादित) के अष्टम अंक (पृ० १३२-१३३) से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

मांसेन तिक्ताम्लेन भक्तं शाकेन सूपेन समत्स्यकेन ।
भुक्तं मया आत्मनो गृहे सादरयकूरेण गुडोदनेन ॥

(कर्णं दत्वा) भिन्नकांस्यकङ्कणाया चाण्डालवाचायाः स्वर-संयोगो यथा चैष उद्गीतो वध्यडिण्डिमशब्दः पटहानां च श्रूयते तथा तर्कयामि दरिद्रचारुदत्तको वध्यस्थानं नीयत इति । तत् प्रेक्षिष्ये । शत्रुविनाशो नाम महान् हृदयस्य परितोषो भवति । श्रुतं च मया योऽपि किल शत्रुं व्यापाद्यमानं पश्यति तस्यान्यस्मिञ्जन्मान्तरेऽक्षिरोगो न भवति । मया खलु विषग्रन्थिगर्भप्रविष्टेनेव कीटकेन किमप्यन्तरं मृग्यमाणेनोत्पादितस्तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य विनाशः । साम्प्रतमात्मीयाया प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायामधिरुह्यात्मनः पराक्रमं पश्यामि । (तथा कृत्वा दृष्ट्वा च) ही ही एतस्य दरिद्रचारुदत्तस्य वध्यं नीयमानस्य एतावान् जनसम्मर्दो, यस्यां वेलायामस्मादृशः प्रवरो वरमनुष्यो वध्यं नीयते तस्यां वेलायां कीदृशं (कीदृशो) भवेत् । (निरीक्ष्य) कथमेष स नवबलीवर्द इव मण्डितो दक्षिणां दिशं नीयते । अथ मदीयायाः प्रासादबालाग्रप्रतोलिकाया समीपे घोषणा निपतिता निवारिता च । (विलोक्य) कथं स्थावरकचेटोऽपि नास्तीह । मा नाम तेनेतो गत्वा मन्त्रभेदः कृतो भूयते (भविष्यति) । तद्यावदेनमन्वेषयामि ।

(इत्यवतीर्योपसर्पति)

१६. कापटिक-प्रलापः[1]

शकार —(सहर्षम्)

मशेण तिक्खावि(वि)लकेण भत्ते शाकेण शूपेण शमच्छकेण ।
भुत्त मए अत्तणअश्श गेहे शालिश्शकूलेण गुलोदणेण ॥

(कर्णं दत्त्वा) भिण्णकशलश्शलाए चण्डालवाआए शलशंजोए जधा अ एशे उश्शालिदे वज्झडिण्डिमशद्दे पडहाण अ शुणीअदि तधा तक्केमि दलिद्दचालुदत्तके वज्झट्ठाण णीअदि त्ति । ता पेक्खिश्शं । शत्तु-विणाशे णाम महन्ते हलअश्श पलितोशे होदि । शुद च मए जे वि(वि) किल शत्तु वावा(वा)दअन्त पेक्खदि तश्श अण्णश्शि जम्मन्तले अक्खिलोगे ण होदि । मए क्खु विशगण्ठिगब्भपविश्टे(स्टे)ण विअ कीडएण किं पि अन्तल मग्गमाणेण उप्पाडिदे ताह दलिद्दचालुदत्ताह विणाशे । शम्पद अत्तणकेलिकाए पाशादबालग्गपदोलिकाए अहिलुहिअ अत्तणो पलक्कमं पेक्खामि । (तथा कृत्वा दृष्ट्वा च) ही ही एदाह दलिद्दचालुदत्ताह वज्झ णीअमाणाह एवड्ढे जणशम्मद्दे ज वेल अम्हालिशे पवले वलमणुश्शे वज्झ णीअदि त वेल कीदिश भवे । (निरीक्ष्य) कध एशे शे णववलद्दके विअ मण्डिदे दक्खिण दिश णीअदि । अध किण्णिमित्त मम केलिकाए पाशादबालग्गपदोलिकाए शमीबे(वे) घोशणा णिव(व)डिदा णिवालिदा अ । (विलोक्य) कध थावलकचेडे वि(वि) णत्थि इध । मा णाम तेण इदो गदुअ मन्तभेदे कडे भवीअदि । ता जाव ण अण्णेशामि ।

(इति अवतीर्योपसर्पति)

---

१. शूद्रक विरचित-मृच्छकटिक (Stenzler द्वारा सम्पादित) के दशम अंक (पृष्ठ १६३-१६४) से उद्धृत ।

(संस्कृतच्छाया)

राक्षसी—(विकृत विहस्य सपरितोषम्)

हतमानुषमांसभोजनं कुम्भसहस्रवसाभिः सचितम्।
अनिशं च पिबामि शोणितं वर्षशतं समरो भविष्यति ॥

(नृत्यन्ती सपरितोषम्) यदि सिन्धुराजवधदिवस इव समरकर्म प्रतिपद्यतेऽर्जुनस्ततश्च पर्यन्तभरितकोष्ठागारं मांसशोणितैर्मे गृहं भूयते (भवति)। (परिक्रम्य दिशोऽवलोक्य) अथ कथ नु रुधिरप्रियो भूयते (भवति)। तद्यावदस्मिन्समरे प्रियभर्तारं रुधिरप्रियमन्विष्यामि। (परिक्रम्य) भवतु शब्दापयिष्यामि तावत्। रुधिरप्रिय! रुधिरप्रिय! इत एहीत एहि।

(ततः प्रविशति तथाविधो राक्षसः)

राक्षसः—(श्रम नाटयन्)

प्रत्यग्रहतानां मांसके यदुष्णं रुधिरं च लभते।
तदेव मम परिश्रमः क्षणमात्रमेव लघु नश्यति ॥

(राक्षसी पुनर्व्याहरति)

राक्षसः—(आकर्ण्य) अरे क एष मां शब्दापयति? (विलोक्य) अरे कथं वसागन्धा! (उपसृत्य) वसागन्धे मां किं शब्दापयसि?

राक्षसी—रुधिरप्रिय! एतत् खलु तव कारणात्प्रत्यग्रहतस्य कस्यापि राजर्षेः शरीरावयवप्रभूतं प्रभूतवसास्नेहचिक्कणं कोष्णं रुधिरमग्रमांसं चानीतं तत्पिबैतत्।

राक्षसः—(सपरितोषम्) साधु वसागन्धे साधु, शोभनं कृतं त्वया बलीयोऽस्मि पिपासित एतत्कोष्णं रुधिरमानीतम्।

राक्षसी—रुधिरप्रिय! ईदृशे हतनरगजतुरगमशोणितवसासमुद्रदुःसंचरे समराङ्गणे परिभ्रमन् त्वं पिपासितोऽसीदित्याश्चर्यमाश्चर्यम्।

१७. शोणित पिपासा[1]

राक्षसी—(विकृत विहस्य, सपरितोषम्)
हदमाणुशमशमोअणे कुम्भशदश्शवशाहि शंचिदे।
अणिश च पिआ(वा)मि शोणिअ वलिशशद शमले हुविश्शदि॥
(नृत्यन्ती सपरितोषम्) जइ शिन्धुलाअलहदिअहे विअ शमलक्कम्म पडिव(व)ज्जइ अज्जुणो(णे) तदो अ पज्जन्तभलिदगोट्ठागाले मशशोणिएहिं मे गेहे हुवीअदि। (परिक्रम्य दिशोऽवलोक्य) अह कहिं णु लुहिलप्पिए हुवीअदि। ता जाव इमश्शि शमले पिअमत्ताल लुहिलप्पिअ अण्णेशामि। (परिक्रम्य) होदु शद्दाव(व,इश्श दाव। लुहिलप्पिआ लुहिलप्पिआ इदो एहि इदो एहि।

(ततः प्रविशति तथाविधो राक्षसः)

राक्षस —(श्रम नाटयन्)
पच्चग्गहदाण मशाए जइ उण्हे लुहिले अ लम्भइ।
ता पशो मह पलिश्शमे खणमेत्तं एव्व लहु णदशइ॥

(राक्षसी पुनर्व्याहरति)

राक्षस —(आश्चर्यं) अले के एशो म शद्दावे(वे)दि। (विलोक्य) अले कहं वशागन्धा। (उपसृत्य) वशागन्धे मंकोश शद्दावे(वे)शि।

राक्षसी—लुहिलप्पिआ एद क्खु तुह कालणादो पच्चग्गहदरश कलश वि (वि) लाएशिणो शलीलाबवप्पहद पहदवशाशिणेहचिक्कण कोण्ह लुहिल अग्गमंशं च आणीद ता पिवा(वा)हि ण।

राक्षस —(सपरितोषम्) शाहु वशागन्धे शाहु, शोहणं किंद तुए वलिअम्हि पिआ(वा)शिदे एद कोशिण लुहिलं आणीद।

राक्षसी—लुहिलप्पिआ ईदिशे हदणलगअतुलगमशोणिअवशाशमुद्दुलशचले शामल्लझणे पडिब्भमन्ते तुम पिआ(वा)शिअशि त्ति अच्चलिअं अच्चलिअं।

---

१. भट्टनारायण (नवीं शताब्दी) विरचित–वणीसंहार (Iulius Grill द्वारा सम्पादित एवं Leipzig में १८७१ में प्रकाशित) के तृतीय अंक (पृ० ३३-३४) से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

राक्षस :—(सक्रोधम्) अरे वसागन्धे! पुत्रघटोत्कचशोकसंतप्तहृदयां स्वामिनीं हिडिम्बादेवीं प्रेक्षितुं गतोऽस्मि।

राक्षसी—रुधिरप्रिय! अद्यापि स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या घटोत्कच-शोको नोपशाम्यति।

राक्षस :—अयि! कुतोऽस्या उपशम, किन्त्वभिमन्युवधशोकसमान-दुःखया सुभद्रादेव्या याज्ञसेन्या च समाश्वास्यते।

राक्षसी—रुधिरप्रिय! गृहाण त्वमेतद्धस्तिशिरःकपालसंचितमग्रमांसोपदंशं च पिब नवशोणितासवम्।

राक्षस :—(तथाकृत्वा) वसागन्धे। अथ कियत्प्रभूतं त्वया संचितं रुधिर-मग्रमांसं च?

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय! पूर्वसंचितं त्वमेव जानासि, नवसंचितं शृणु। भगदत्तशोणितकुम्भः सिन्धुराजवसाकुम्भौ द्वौ मत्स्याधिपभूरिश्रव सोमदत्तबाल्हीकप्रमुखाणां नरेन्द्राणां प्राकृतपुरुषाणां च रुधिरवसामांसस्य घटा अपिनद्धमुखा सहस्रसंख्याः सन्ति मे गृहे।

राक्षस —(सपरितोषमालिङ्ग्य) साधु साधु सुगृहिण्याः साधु साधु। अनेन ते सुगृहिणीत्वेन स्वामिन्या हिडिम्बादेव्याः संविभागेन च प्रनष्टं मे दारिद्र्यम्।

राक्षसी—रुधिरप्रिय! कीदृश स्वामिन्या संविभागः कृतः?

राक्षस :—अद्याहं स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या सबहुमानं शब्दापयित्वा-ज्ञप्तो यथा रुधिरप्रिय अद्यप्रभृत्यार्यपुत्रभीमसेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठं समर आहिण्डितव्यमिति। तत्तस्यानुमार्गगामिनीं हतमानुषशोणितनदीदर्शनप्रनष्टबुभुक्षापिपासयेहैव संगमस्तु-मुलको मे भूयते (भवति)। त्वमपि विश्रब्धा भूत्वा रुधिर-वसाभिः कुम्भसहस्रं संचय।

१८. योग्यं योग्येन[1]

राक्षसः—(सक्रोधम्) अले वशागन्धे । पुत्तघडुक्कअशोअशंतत्तहिअअं शामिणिं हिडिम्बादेइं पेक्खिदुं गदम्हि ।

राक्षसी—लुहिलप्पिआ । अज्ज वि(वि) शामिणीए हिडिम्बादेईए घडुक्क-अशोए ण उव(व)शम्मदि ।

राक्षसः—अह कुदो शे उव(व)शमे किं तु अहिमण्णुवहशोअशमाणदुक्खाए शुभद्दादेवीए जण्णशेणीए अ शमाशाशीअदि ।

राक्षसी—लुहिलप्पिआ गेण्ह तुमं एदं हत्थिशिलकवा(वा)लशंचिअं अग्गमंशोव(व)दंश अ पिव(व)हि णवशोणिआशवं ।

राक्षसः—(तथा कृत्वा) वशागन्धे अह किअप्पहूदं तुए शंचिअं लुहिलं अग्गमंशं च !

राक्षसी—अले लुहिलप्पिआ । पुव्वशंचिअं तुमं जेव्व जाणासि, णवशंचिअं शिणु । भअदत्तशोणिअकुम्भे शिन्धुलाअवशाकुम्भे दुवे मच्छाहिव(व)मूलिश्शवशोमदत्तवल्हीअप्पमुहाणं णलिन्दाणं पाकिदपुलिशाणं च लुहिलवशामंशश्श घडा अवि(वि)णट्ठमुद्दा शहश्शशंक्खा शन्ति मे गेहे ।

राक्षसः—(सपरितोषमालिङ्ग्य) शाहु शाहु शुघलिणीए शाहु शाहु । इमिणा दे शुघलिणित्तणेण शामिणीए हिडिम्बादेवीए शंविहाणेण अ पणट्ठं मे दालिद्दं ।

राक्षसी—लुहिलप्पिआ केलिशो शामिणीए शंविहाए किदे ?

राक्षसः—अज्ज अहं शामिणीए हिडिम्बादेईए शद्दाविअ(वि)अ आणत्ते जह लुहिलप्पिआ अज्ज पहुदि अज्जउत्तभीमशेणश्श पिट्ठाणुपिट्ठं शमले आहिण्डिदव्वं चि(त्ति)। ता तश्श अणुमग्गगा-मिणो इदभाणुशशोणिअमईदंशणप्फणट्ठुघुम्मादिना(वा)शश्श इह एव्व शंगमो तुम्हओ मे दुवीअदि तुमं चि(वि) शिदादा भरिअ लुहिलवशाहिं कुम्भशदणं शंचेहि ।

---

1. भट्टनारायण विरचित वेणीसंहार (सम्पादक—Julius Grill) के तृतीय अङ्क (पृष्ठ १४-१५) से उद्धृत ।

अर्धमागधी प्राकृत

प्रमुख विशेषताएं

व्यञ्जनपरिवर्तन

लुप्त व्यञ्जन > यश्रुति, श्रेणिकम् = सेणियं, च = य, चामध्वजा = चामउज्झया, एतत् = एयं आदि।

क > ग, श्रावक = सावगे, दारकस्य = दारगस्स।

न > ण, न; गमनाय = गमणाए, नाम = नामं।[1]

प > व, उपमा = उवमा, तपति = तवइ।

शब्दरूप

सु (विभक्ति प्रत्यय) = ए, क्वचित् ओ, श्रेणिक = सेणिए, भगवन् = भगवन्तो भगवं।

ङे (" ") आए, आते, जिनाय = जिणाए, जिणाते।

ङि (" ") मसि, धरणीतले = धरणीयलंसि, परिणम्यमाने = परिणयमाणंसि।

तत् + भ्यस् = तेब्भो आदि।

युष्मद् + ङस् = तव आदि, अस्मत् + आम् = अस्माकं आदि।

धातुरूप—

भूतकाल बहुवचन में इसु प्रत्यय, पुच्छिसु गच्छिसु।

कुछ विशिष्ट रूप- आचक्षति = आइक्खइ, अब्रवीत् = अब्बवी, आसीत् = होत्था आदि।

१—संयुक्त व्यञ्जन में यदि एक व्यञ्जन ण हो तो उसे ण्ण हो जाता है। अन्य स्थलों पर न्न होता है। यथा—जीर्णं = जुण्णं दत्त = दिन्न।

A Manual of Ardha-Magadhi Grammar.

(द्रष्टव्य—पाइअ सद्-महण्णवो की भूमिका पृष्ठ ३६ से ४२ तक) तथा A Manual of Ardha-Magadhi Grammar by P.L Vaidya)

आगम तथा आदेश

म् *आगम*, एवैकम् = एगमेगं, निरयगामी = निरयंगामी ।

अम् > *आम्* (एव से पूर्व), तमेव = तामेव, एवमेव = एवामेव ।

इति वा > *ति वा*, *इ वा* (दीर्घ स्वर से परे) इन्द्रमह इति वा = इंदमहे ति वा, इंदमहे इ वा ।

यथा > *अहा*, *जहा* ; यथाजातं = अहाजातं, यथानामकः = जहाणामए ।

यावत् > *आव*, *जाव* ; यावत्कथा = आवकहा, यावज्जीवं = जावज्जीवं ।

तर > *तराय*, अल्पतरः = अप्पतराए, बहुतरः = बहुतराए ।

कृदन्त

क्त्वा > *ट्टु*, *च्चा*, *इत्ता*, *इत्ताणं*, *तुआणं*, *आय*, *आए* ।

कृत्वा = कट्टु, किच्चा, करित्ता, करित्ताण, काउआणं ।

गत्वा = गच्चा, गच्छित्ताणं ।

गृहीत्वा = गहाय ; आदाय = आयाए ; संप्रेक्ष्य = संपेहाए ।

तुम् > *त्तए*,

कर्तुं = करित्तए, द्रष्टुम् = पासित्तए ।

(शेष प्राकृत के सामान्य नियमों के अनुसार)

(संस्कृतच्छाया)

ततः खलु स कूणिको राजा चेल्लनाया देव्या अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य चेल्लनां देवीमेवमवादीत्—"दुष्टु खलु अम्ब ! मया कृतं श्रेणिकं राजानं प्रियं दैवतं गुरुजनकमत्यन्तस्नेहानुरागरक्तं निगडबन्धनं कुर्वता। तद् गच्छामि खलु श्रेणिकस्य राज्ञः स्वयमेव निगडानि छिनद्मि", इति कृत्वा परशुहस्तगतो यत्रैव चारकशाला तत्रैव प्रधारयति गमनाय। ततः खलु श्रेणिको राजा कूणिकं कुमारं परशुहस्तगतमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्— "एष खलु कूणिकः कुमारः अप्रार्थित-प्रार्थितो यावत् श्रीह्रीपरिवर्जितः परशुहस्तगत इह हव्यामगच्छति। तन्न ज्ञायते खलु मां केनापि कुमारेण (कुत्सितमारेण) मारयिष्यती" ति कृत्वा भीतो यावत् संजातभयस्तालपुटकं विषमास्ये प्रक्षिपति। ततः खलु स श्रेणिको राजा तालपुटकविषे आस्ये प्रक्षिप्ते सति मुहूर्त्तान्तरेण परिणम्यमाने निष्प्राणो निश्चेष्टो जीवविप्रयक्तोऽवतीर्णः।

ततः खलु स कूणिकः कुमारो यत्रैव चारकशाला तत्रैवोपागतः, उपगत्य श्रेणिकं राजानं जीवविप्रत्यक्तमवतीर्णं पश्यति, दृष्ट्वा महता पितृशोकेन आक्रान्त सन् परशुनिकृत्त इव चम्पकवरपादप "धस" इति धरणी-तले सर्वाङ्गैः संनिपतित। ततः खलु स कूणिक' कुमारो मुहूर्तान्तरेण आसनस्थः सन् रुदन् क्रन्दन् शोचन् विलपन् एवमवादीत्—"अहो! खलु मया अधन्येनापुण्येनाकृतपुण्येन दुष्टु कृतं श्रेणिकं राजानं प्रियं दैवतमत्यन्तस्नेहानुरागरक्तं निगडबन्धनं कुर्वता, मम मूलकं चैव खलु श्रेणिको राजा कालगत" इति।

१९. श्रेणीकराजस्य प्राणत्यागः[1]

तए णं से कूणिए राया चेल्लणाए देवीए अन्तिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म चेल्लणं देविं एवं वयासी—"दुट्ठु णं, अम्मो, मए कयं सेणियं रायं पियं देवयं गुरुजणगं अच्चन्तनेहाणुरागरत्तं नियलबन्धणं करन्तेणं। तं गच्छामि णं सेणियस्स रन्नो सयमेव नियलाणि छिन्दामि" त्ति कट्टु परसुहत्थगए जेणेव चारगसाला तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं सेणिए राया कूणियं कुमारं परसुहत्थगयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—"एस णं कूणिए कुमारे अपत्थियपत्थिए जाव सिरिहिरिपरिवज्जिए परसुहत्थगए इह हव्वमागच्छइ। तं न नज्जइ णं ममं केणइ कुमारेणं मारिस्सइ" त्ति कट्टु भीए जाव संजायभए तालपुडगं विसं आसगंसि पक्खिवइ। तए णं से सेणिए राया तालपुडगविसंसि आसगंसि पक्खित्ते समाणे मुहुत्तन्तरेण परिणममाणंसि निप्पाणे निच्चेट्ठे जीवविप्पजढे ओइण्णे।

तए णं से कूणिए कुमारे जेणेव चारगसाला तेणेव उवागए उवागच्छित्ता सेणियं रायं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं ओइण्णं पासइ, पासित्ता महया पिइसोएणं अप्फुण्णे समाणे परसुनियत्ते विव चम्पगवरपायवे धस त्ति धरणीयलंसि सव्वङ्गेहिं संनिवडिए। तए णं से कूणिए कुमारे मुहुत्तन्तरेण आसत्थे समाणे रोयमाणे कन्दमाणे सोयमाणे विलवमाणे एवं वयासी—"अहो णं मए अधन्नेणं अपुण्णेणं अकयपुण्णेणं दुट्ठु कयं सेणियं रायं पियं देवयं अच्चन्तनेहाणुरागरत्तं नियलबन्धणं करन्तेणं। ममंमूलागं चेव णं सेणिए राया कालगए" त्ति।

---

१. निरयावलियाओ (सम्पादक एवं प्रकाशक डाक्टर पी० एल० वैद्य, पूना १९३२) के प्रथम वर्ग (पृ० १७-१८) से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

तत खलु स चेटको राजा अस्याः कथाया लब्धार्थः सन् नवमल्लकि-नवलेच्छविकाशीकौशलकानष्टादशापि गणराजान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रियाः! वेहल्ल्यः कुमारः कूणिकस्य राज्ञोऽसविदितेन सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्रं च हारं गृहीत्वा इह हव्यमागतः। ततः खलु कूणिकेन सेचनकस्याष्टादशवक्रस्य चार्थाय त्रयो दूताः प्रेषिताः। ते च मयाऽनेन कारणेन प्रतिषिद्धाः। ततः खलु स कूणिको मम एतमर्थमप्रतिशृण्वन् चातुरङ्गिण्या सेनया सार्द्धं संपरिवृतो युद्धसज्ज इह हव्यमागच्छति। तत् किं नु देवानुप्रियाः! सेचनकम-ष्टादशवक्रं च कूणिकाय राज्ञे प्रत्यर्पयामः? वेहल्ल्यं कुमारं प्रेषयामः? उताहो युध्यामहे? तत खलु नवमल्लकिनवलेच्छविकाशीकौशलका अष्टादशापि गणराजाश्चेटकं राजानमेवमवादिषुः—'नैतत् स्वामिन्! युक्तं वा प्राप्तं वा राजसदृशं वा यत्खलु सेचनकमष्टादशवक्रं कूणिकाय राज्ञे प्रत्यर्प्यते, वेहल्ल्यश्च कुमारः शरणागतः प्रेष्यते। तत् यदि खलु कूणिको राजा चातुरङ्गिण्या सेनया सार्द्धं संपरिवृतो युद्धसज्ज इह हव्यमागच्छति तदा खलु वयं कूणिकेन राज्ञा सार्द्धं युध्यामहे।'

ततः खलु स चेटको राजा तान् नवमल्लकि नवलेच्छवि काशी-कौश-लकानष्टादशापि गणराजान् एवमवादीत्- यदि खलु देवानुप्रियाः! यूयं कूणिकेन राज्ञा सार्द्धं युध्यध्वं, तद्गच्छत खलु देवानुप्रियाः स्वकेषु स्वकेषु राज्येषु, स्नाता यथा कालादिका यावज्जयेन विजयेन वर्द्धयन्ति। ततः खलु स चेटको राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत् आभिषेक्यं यथा कूणिको यावद् दुरूढ।

२०. कूणिकचेटकयोर्युद्धोद्योगः[1]

तए णं से चेडए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे नव मल्लई नव लेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—एवं खलु, देवाणुप्पिया, वेहल्ले कुमारे कूणियस्स रन्नो असंविदिएणं सेयणगं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय इहं हव्वमागए। तए णं कूणिएणं सेयणगस्स अट्ठारसवंकस्स य अट्ठाए तओ दूया पेसिया। ते यं मए इमेणं कारणेणं पडिसेहिया। तए णं से कूणिए ममं एयमट्ठं अपडिसुणमाणे चाउरङ्गिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे जुद्धसज्जे इहं हव्वमागच्छइ। तं किं णं, देवाणुप्पिया, सेयणगं अट्ठारसवंकं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामो? वेहल्लं कुमारं पेसेमो? उदाहु जुज्झित्था? तए णं नव मल्लई नव लेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो चेडगं रायं एवं वयासी—"न एयं, सामी, जुत्तं वा पत्तं वा रायसरिसं वा, जं णं सेयणगं अट्ठारसवंकं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणिज्जइ, वेहल्ले य कुमारे सरणागए पेसिज्जइ। तं जइ णं कूणिए राया चाउरङ्गिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे जुद्धसज्जे इहं हव्वमागच्छइ, तए णं अम्हे कूणिएणं रन्ना सद्धिं जुज्झामो"।

तए णं से चेडए राया ते नव मल्लई नव लेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो एवं वयासी—"जइ णं, देवाणुप्पिया, तुब्भे कूणिएणं रन्ना सद्धिं जुज्झह, तं गच्छह णं, देवाणुप्पिया, सएसु सएसु रज्जेसु ण्हाया, जहा कालाईया," जाव जएणं विजएणं वद्धावेन्ति। तए णं से चेडए राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"आभिसेक्कं, जहा कूणिए" जाव दुरूढे।

---

1. निरयावलियाओ (सम्पादक एवं प्रकाशक पी० एल० वैद्य, पूना १९३२) के प्रथम वर्ग (पृ० २६-२७) से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

तेन कालेन तेन समयेन (तस्मिन् काले तस्मिन् समये) वाणिजग्रामो नाम नगरमासीत् ऋद्धस्तिमितसमृद्धम्। तस्य खलु वाणिजग्रामस्योत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे दूतीपलाश नामोद्यानमासीत्। तत्र खलु दूतीपलाशे सुधर्मणो यक्षस्य यक्षायतनमासीत्। तत्र खलु वाणिजग्रामे मित्रो नाम राजा आसीत्। तस्य खलु मित्रस्य राज्ञः श्रीर्नाम राज्ञी आसीत्।

तत्र खलु वाणिजग्रामे कामध्वजा नाम गणिका आसीत् अहीनयावत् सुरूपा द्वासप्ततिकलापण्डिता चतुःषष्टिगणिकागुणोपपेता एकोनत्रिंशति विशेषेषु रममाणा एकविंशतिरतिगुणप्रधाना द्वात्रिंशत् पुरुषोपचारकुशला नवाङ्गसुप्तप्रतिबोधिता अष्टादशदेशीयभाषाविशारदा शृङ्गारागारचारुवेषा गीतरतिगन्धर्वनाट्यकुशला संगत-गत-हसित-भणित-विहित-विलास-ललित सलाप-निपुण-युक्तोपचारकुशला, सुन्दर-स्तन-जघन-वदन-कर-चरण-लावण्यविलासकलिता उच्छ्रितध्वजा सहस्रलाभा वितीर्णछत्रचामरवालव्यजनिका कर्णीरथप्रयाता चापि आसीत् बहूनां गणिकासहस्राणामाधिपत्यं पौरोवृत्यं स्वामित्वं भर्तृत्वं महत्तरकत्वमाज्ञेश्वरसेनापत्यं कारयन्ती (परे) पालयन्ती विहरति।

२१. कामध्वजा गणिका[1]

तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नामं नयरे होत्था रिद्ध-त्थिमियसमिद्धे। तस्स णं वाणियगामस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए दूईपलासे नामं उज्जाणे होत्था। तत्थ णं दूईपलासे सुहम्मस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था। तत्थ णं वाणियगामे मित्ते नामं राया होत्था। तस्स णं मित्तस्स रन्नो सिरी नामं देवी होत्था।

तत्थ णं वाणियगामे कामज्झया नामं गणिया होत्था अहीण-जाव सुरूवा बावत्तरिकलापण्डिया चउसट्ठिगणियागुणोववेया एगूणतीसविसेसे रममाणी एक्कवीसरइगुणप्पहाणा बत्तीसपुरिसोवयारकुसला नवङ्गसुत्तपडिबोहिया अट्ठारसदेसीभासाविसारया सिंगारागारचारुवेसा गीयरइगन्धव्वनट्टकुसला संगय-गय-हसिय-भणिय-विहिय-विलास-ललिय-संलाव-निउण-जुत्तोवयारकुसला, सुन्दर-थण-जहण-वयण-करचरण-लावण्णविलास-कलिया ऊसियज्झया सहस्सलम्भा विदिण्णछत्तचामरवालवीयणीया कण्णीरहप्पयाया यावि होत्था बहूण गणियासहस्साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणी पालेमाणी विहरइ।

---

१. विवागसुय (डाक्टर पी० एल० वैद्य पूना द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित १९३५) पृष्ठ १६-१७ से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

तेन कालेन तेन समयेन (तस्मिन् काले तस्मिन् समये) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी इन्द्रभूतिर्यावत् तेजोलेश्यः षष्ठ षष्ठेन यथा प्रज्ञप्तौ प्रथमायां यावत् यत्रैव वाणिजग्रामः तत्रैवोपागच्छति उपगम्य वाणिजगामे उच्चनीचमध्यमानि कुलानि अटन् यत्रैव राजमार्गः तत्रैवोपागच्छति, उपगत्य तत्र खलु बहून् हस्तिन पश्यति सनद्धबद्धवर्मितगुडितान् उत्पीडितवरत्रान्, उद्दामितघण्टान्, नानामणिरत्नविविधग्रैवेयकान्, उत्तरकञ्चुकितान्, परिकल्पितध्वजपताकावरपञ्चापीडान् आरूढहस्त्यारोहान् गृहीतायुधप्रहरणान्। अन्यांश्च तत्र बहून् अश्वान् पश्यति, संनद्धबद्धवर्मितगुडितान्, आविद्धगुडान्, अवसारितपक्खरान् उत्तरकञ्चुकितान् अवचूलकमुखचण्डाधरचामरस्थासकपरिमण्डितकटीन् आरूढाश्वारोहान्, गृहीतायुधप्रहरणान्, तेषां च खलु पुरुषाणां मध्यगतं एकं पुरुषं पश्यति, अवकोटकबन्धनम्, उत्कृत्तकर्णनासम्, स्नेहतपितगात्रम् बद्धकरकडियुगन्यस्तम्, कण्ठे गुणरक्तमाल्यदामानं चूर्णगुण्डितगात्रम्, चूर्णकम्, वध्यप्राणप्रियं तिलं तिलं चैव छेद्यमानं काकणिमांसखादम्, पापं खर्परशतैर्हन्यमानं, अनेकनरनारिसंपरिवृतं चत्वरे चत्वरे खण्डपटहेन उद्घोष्यमाणम्, इमां च खलु एतद्रूपाम् उद्घोषणां शृणोति—नो खलु हे देवानुप्रिया ! उज्झितकस्य दारकस्य कोऽपि राजा वा राजपुत्रो वा अपराध्यति, आत्मनस्तस्य स्वकानि कर्माणि अपराध्यन्ति।

२२. कर्म-विपाक:[1]

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अन्तेवासी इन्दभूई नामं अणगारे जाव लेस्से छट्ठंछट्ठेणं, जहा पन्नत्तीए, पढम जाव जेणेव वाणियगामे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उच्चनीयमज्झिमकुलाइं अडमाणे जेणेव रायमग्गे तेणेव ओगाढे। तत्थ णं बहवे हत्थी पासइ संनद्धबद्धवम्मियगुडियउप्पीलियकच्छे उद्दामियघण्टे नाणामणिरयणविविहगेवेज्जउत्तरकन्चुइज्जे पडिकप्पिए झयपडागवरप न्चामेलआरूढहत्थारोहे गहियाउहप्पहरणे। अन्ने य तत्थ बहवे आसे पासइ संनद्धबद्धवम्मियगुडिए आविद्धगुडे ओसारियपक्खरे उत्तरकन्चुइयओचूलमुहचण्डाधरचामरथासगपरिमण्डियकडिए आरूढआसारोहे गहियाउप्पहरणे। अन्ने य तत्थ बहवे पुरिसे पासइ संनद्धबद्धवम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टिए पिणद्धगेवेज्जे विमलवरबद्धचिन्धपट्टे गहियाउहप्पहरणे। तेसिं च णं पुरिसाणं मज्झगयं पुरिसं पासइ अवओडयबन्धणं उक्खित्तकण्णनासं नेहतुप्पियगत्तं वज्झकच्छडियजुयनियत्थं कण्ठे गुणरत्तमल्लदामं चुण्णगुण्डियगत्तं चुण्णयं वज्झपाणपियं तिलं तिलं चेव छिज्जमाणं कागणिमंसाइं खावियन्तं पावं खक्खरगसएहिं हम्ममाणं अणेगनरनारीसंपरिवुडं चच्चरे चच्चरे खण्डपडहएणं उग्घोसिज्जमाणं। इमं च णं एयारूवं उग्घोसणं पडिसुणेइ—नो खलु, देवाणुप्पिया, उज्झियगस्स दारगस्स केइ राया वा रायपुत्तो वा अवरज्झइ, अप्पणो से सयाइं कम्माइं अवरज्झन्ति।

---

१. विवागसुय (डाक्टर पी० एल० वैद्य द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित, १९३३) पृष्ठ १७-१८ से उद्धृत।

जैन-शौरसेनी प्राकृत[1]

विशेषताएँ प्रमुख

१. अनादि असंयुक्त क, ग, आदि व्यञ्जनों का प्राय. लोप हो जाता है। तत्पश्चात् यदि अ या आ अवशिष्ट रहे तो लुप्त व्यञ्जन के स्थान पर यश्रुति होती हैं।

सामायिकम्=सामइयं, वचनैः=वयणेहिं, योगिनी=जोइणी, गजाः=गया आदि।

२. यदि लुप्त वर्ण के पूर्व उकार हो तो प्राय' यश्रुति हो जाती है।

मनुज =मणुवो, उदरम्=उवरं।

३. कुछ स्थलों पर क को ग एवं त को द हो जाता है।

अवकाशम्=अवगासं, एकम्=एगं, गतीनाम्=गदीणं, भणितः=भणिदो।

---

१. (अ) दिगम्बर जैनो के आगम ग्रन्थो की भाषा को जैन शौरसेनी संज्ञा दी गई। वास्तव में यह भाषा शौरसेनी प्राकृत का ही प्रारम्भिक रूप है। नाटको में पाई जाने वाली शौरसेनी इसी का परिष्कृत रूप है। इसमें हमें अर्धमागधी प्राकृत से साम्यता रखने वाले कुछ वर्णविकार मिलते हैं, जिससे कि वर्तमान शौरसेनी से यह कुछ भिन्न प्रतीत होती है। अत एव इसे जैन-शौरसेनी नामक सज्ञा दे दी गई। इतना अवश्य है कि जिन्होने केवल संस्कृत नाटको मे स्थित शौरसेनी प्राकृत के अशो का सामान्य अध्ययन किया हो उन्हें जैन-शौरसेनी प्राकृत कुछ अपरिचित सी प्रतीत होगी। जैन शौरसेनी प्राकृत के ज्ञान के लिए कहीं कहीं अर्धमागधी के ज्ञान की भी आवश्यकता होती है। अतः उसकी कुछ विशेषताओ का उल्लेख उसे पृथक भाषा मानकर किया गया है। इसके प्रमुख ग्रन्थ प्रवचनसार समयसार, कार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि हैं।

(ब) इस भाषा के विस्तृत ज्ञान के लिए देखिए डॉ० ए० एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित प्रवचनसार एवं कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थो की भूमिकाएँ।

४. अनुनासिक व्यञ्जनों में केवल ण एवं म का ही अस्तित्व पाया जाता है। स्ववर्ग के पूर्व आने वाले ङ्, ञ्, ण्, न्, म्, को नियम से अनुस्वार हो जाता है। न्न को ण्ण होता है।[1]

नियमेन = णियमेण, भुजङ्ग = भुयंगो, किञ्चित् = किंचि, खण्डेषु = खंडेसु, वन्दितः = वंदिओ, संप्राप्तिः = संपत्ती, भिन्नं = भिण्णं।

५. कुछ स्थलों पर व्यञ्जनों में द्वित्वीकरण की प्रवृत्ति देखी जाती है। त्रिलोकशिखामणिः = तिल्लोयसिहामणी, शौचम् = सउच्चं।

६. कहीं कहीं विभक्ति-प्रत्यय से शून्य पद दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे—अध्रुवमशरणं भणिताः = अद्धुव असरण भणिया।

७. सप्तमी विभक्ति के एकवचन में हि को म्हि भी होता है।

स्वरूपे = सरूवम्हि, लोके = लोयम्हि।

८. क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर त्ता, च्चा भी होते हैं।

ज्ञात्वा = जाणित्ता, कृत्वा = किच्चा आदि।

---

१. आर० पिशल ने अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री एवं जैन-शौरसेनी में शब्द के प्रारम्भिक न एवं मध्यगत न्न को अपरिवर्तित बताया है (देखिए पि० प्रा० पारा० नं० २१६) किन्तु जैनशौरसेनी में दोनों (न, न्न) ही नहीं पाये जाते हैं।

(संस्कृतच्छाया)

गाथा ३ वरभवनयानवाहनशयनासनानि देवमनुजराज्ञाम् ।
मातृपितृस्वजनभृत्यसम्बन्धिनश्च पितृव्योऽनित्याः ॥१॥

गाथा ४ समग्रेन्द्रियरूपमारोग्यं यौवनं बलं तेजः ।
सौभाग्यं लावण्यं सुरधनुरिव शाश्वतं न भवेत् ॥२॥

गाथा ६ जीवनिबद्धं देहं (देह) क्षीरोदकमिव विनश्यति शीघ्रम् ।
भोगोपभोगकारणद्रव्यं नित्य कथ भवति ॥३॥

गाथा ८ मणिमन्त्रौषधरक्षा हयगजरथाश्च सकलविद्या ।
जीवानां न हि शरणं त्रिषु लोकेषु मरणसमये ॥४॥

गाथा ९ स्वर्गो भवेत् हि दुर्गं भृत्या देवाश्च प्रहरणं वज्रम् ।
ऐरावणो गजेन्द्र इन्द्रस्य न विद्यते शरणम् ॥५॥

गाथा १० नवनिधिः चतुर्दशरत्नं हयमत्तगजेन्द्रचतुरङ्गबलम् ।
चक्रेशस्य न शरणं पश्यत कर्दितं कालेन ॥६॥

गाथा १४ एकः करोति कर्म एक. हिण्डति च दीर्घसंसारे ।
एकः जायते म्रियते च तस्य फलं भुङ्क्ते एकः ॥७॥

गाथा १५ एकः करोति पापं विषयनिमित्तेन तीव्रलोभेन ।
नरकतिर्यक्षु जीवो तस्य फलं भुङ्क्ते एक ॥८॥

गाथा १६ एकः करोति पुण्यं धर्मनिमित्तेन पात्रदानेन ।
मानवदेवेषु जीवो तस्य फलं भुङ्क्ते एकः ॥९॥

गाथा २१ मातृपितृसहोदरपुत्रकलत्रादिबन्धुसन्दोह. ।
जीवस्य न सम्बन्धो निजकार्यवशेन वर्तन्ते ॥१०॥

गाथा २२ अन्योऽन्यं शोचति मदीयोऽस्ति ममनाथक इति मन्यमानः ।
आत्मानं न हि शोचति संसारमहार्णवे पतितम् ॥११॥

२३. द्वादश-अनुप्रेक्षा[1]

गाथा ३ वरभवणजाणवाहणसयणासण देवमणुवरायाणं ।
मादुपिदुसजणभिच्चसंबंधिणो य पिदिवियाणिच्चा ॥ १ ॥

गाथा ४ सामग्गिंदियरूवं आरोग्गं जोव्वण बलं तेजं ।
सोहग्गं लावण्णं सुरधणुमिव सस्सयं ण हवे ॥ २ ॥

गाथा ६ जीवणिबद्धं देहं खीरोदयमिव विणस्सदे सिग्घं ।
भोगोपभोगकारणदव्वं णिच्चं कहं होदि ॥ ३ ॥

गाथा ८ मणिमंतोसहरक्खा हयगयरहओ य सयलविज्जाओ ।
जीवाणं ण हि सरणं तिसु लोए मरणसमयम्हि ॥ ४ ॥

गाथा ९ सग्गो हवे हि दुग्गं भिच्चा देवा य पहरणं वज्जं ।
अइरावणो गइंदो इंदस्स ण विज्जदे सरणं ॥ ५ ॥

गाथा १० णवणिहि चउदहरयणं हयमत्तगइंद चाउरंगबलं ।
चक्केसस्स ण सरणं पेच्छंतो कद्दिये काले ॥ ६ ॥

गाथा १४ एक्को करेदि कम्मं एक्को हिंडदि य दीहसंसारे ।
एक्को जायदि मरदि य तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥ ७ ॥

गाथा १५ एक्को करेदि पावं विसयणिमित्तेण तिव्वलोहेण ।
णिरयतिरियेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥ ८ ॥

गाथा १६ एक्को करेदि पुण्णं धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण ।
मणुवदेवेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥ ९ ॥

गाथा २१ मादापिदरसहोदरपुत्तकलत्तादिबंधुसंदोहो ।
जीवस्स ण संबंधो णियकज्जवसेण वट्टन्ति ॥ १० ॥

गाथा २२ अण्णो अण्णं सोयदि मदो त्ति मम णाहगो त्ति मण्णंतो ।
अप्पाणं ण हु सोयदि संसारमहण्णवे बुड्ढं ॥ ११ ॥

---

1. आचार्य कुन्दकुन्द (प्रथम शताब्दी) विरचित-षट्प्राभृतादिसंग्रहः (पं० पन्नालाल सोनी द्वारा सम्पादित तथा श्री माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति द्वारा वि० सं० १९७७ में प्रकाशित) के अंतर्गत बारह अनुवेक्खा से उद्धृत ।

गाथा ३० पुत्रकलत्रनिमित्तं अर्थमर्जयति पापबुद्धया।
परिहरति दयादानं सः जीवः भ्रमति संसारे॥ १॥

गाथा ३१ मम पुत्रो मम भार्या मम धनधान्यमिति तीव्रकांक्षया।
त्यक्त्वा धर्मबुद्धिं पश्चात् परिपतति दीर्घसंसारे॥ २॥

गाथा ३६ संयोगविप्रयोगं लाभालाभं सुखं च दुःखं च।
संसारे भूतानां भवति हि मानं तथापमानं च॥ ३॥

गाथा ७१ क्रोधोत्पत्तेः पुनः बहिरङ्गं यदि भवेत् साक्षात्।
न करोति किञ्चिदपि क्रोधं तस्य क्षमा भवति धर्म इति॥४॥

गाथा ७२ कुलरूपजातिबुद्धिषु तपश्रुतशीलेषु गर्वं किञ्चित्।
यो नैव करोति श्रमणो मार्दवधर्मो भवेत् तस्य॥ ५॥

गाथा ७३ मुक्त्वा कुटिलभावं निर्मलहृदयेन चरति यः श्रमणः।
आर्जवधर्मः तृतीयः तस्य तु संभवति नियमेन॥ ६॥

गाथा ७४ परसन्तापककारणवचनं मुक्त्वा स्वपर-हितवचनम्।
यो वदति भिक्षु तुरीयः तस्य तु धर्मः भवेत् सत्यम्॥ ७॥

गाथा ७७ विषयकषायविनिग्रहभावं कृत्वा ध्यानस्वाध्यायेन।
यो भावयत्यात्मानं तस्य तपः भवति नियमेन॥ ८॥

गाथा ७९ भूत्वा च निस्सङ्गो निजभावं निगृह्य सुखदुःखदम्।
निर्द्वन्द्वेन तु वर्ततेऽनगारः तस्याकिञ्चन्यम्॥ ९॥

गाथा ८० सर्वाङ्गं पश्यन् स्त्रीणां तासु मुञ्चति दुर्भावम्।
स ब्रह्मचर्यभावं सुकृती खलु दुर्धरं धरति॥ १०॥

गाथा ३० पुत्तकलत्तणिमित्तं अत्थं अज्जयदि पावबुद्धीए ।
परिहरदि दयादाणं सो जीवो भमदि संसारे ॥१॥

गाथा ३१ मम पुत्तं मम भज्जा मम धणधण्णोत्ति तिव्वकंखाए ।
चइऊण धम्मबुद्धिं पच्छा परिपडदि दीहसंसारे ॥२॥

गाथा ३६ संजोगविप्पजोगं लाहालाहं सुहं च दुक्खं च ।
संसारे भूदाणं होदि हु माणं तहावमाणं च ॥३॥

गाथा ७१ कोहुप्पत्तिस्स पुणो बहिरंगं जदि हवेदि सक्खादं ।
ण कुणदि किंचि वि कोहो तस्स खमा होदि धम्मोत्ति ॥४॥

गाथा ७२ कुलरूवजादिबुद्धिसु तवसुदसीलेसु गारवं किंचि ।
जो ण वि कुव्वदि समणो मद्दवधम्मं हवे तस्स ॥५॥

गाथा ७३ मोत्तूण कुडिलभावं णिम्मलहिदयेण चरदि जो समणो ।
अज्जवधम्मं तइयो तस्स दु संभवदि णियमेण ॥६॥

गाथा ७४ परसंतावयकारणवयणं मोत्तूण सपरहिदवयणं ।
जो वददि भिक्खु तुरियो तस्स दु धम्मो हवे सच्चं ॥७॥

गाथा ७७ विसयकसायविणिग्गहभावं काऊण झाणसज्झाए ।
जो भावइ अप्पाणं तस्स तवं होदि णियमेण ॥८॥

गाथा ७९ होऊण य णिस्संगो णियभावं णिग्गहित्तु सुहदुहदं ।
णिद्दंदेण दु वट्टदि अणयारो तस्स किंचण्हं ॥९॥

गाथा ८० सव्वंगं पेच्छंतो इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं ।
सो बम्हचेरभावं सुक्कदि खलु दुद्धरं धरदि ॥१०॥

(संस्कृतच्छाया)

गाथा ४ यत् किंचिदत्युत्पन्नं तस्य विनाशो भवति नियमेन ।
परिणामस्वरूपेणापि न च किंचिदपि शाश्वतमस्ति ॥१॥

गाथा ५ जन्म मरणेन समं संपद्यते यौवनं जरासहितम् ।
लक्ष्मीर्विनाशसहिता इति सर्वं भङ्गुरं जानीहि ॥२॥

गाथा ६ अस्थिरं परिजनस्वजनं पुत्रकलत्रं सुमित्रलावण्यम् ।
गृहगोधनादि सर्वं नवघनवृन्देन सदृशम् ॥३॥

गाथा ७ सुरधनुस्तडिद्वत् चपला इन्द्रियविषयाः सुभृत्यवर्गाश्च ।
दृष्टप्रनष्टाः सर्वे तुरगगजाः रथवरादयश्च ॥४॥

गाथा ८ पथि पथिकजनानां यथा संयोगो भवति क्षणमात्रम् ।
बन्धुजनानां च तथा संयोगोऽध्रुवो भवति ॥५॥

गाथा ९ अतिलालितोऽपि देहः स्नानसुगन्धैः विविधभक्ष्यैः ।
क्षणमात्रेणापि विघटते जलभृत आमघट इव ॥६॥

गाथा १० या शाश्वता न लक्ष्मीः चक्रधराणामपि पुण्यवताम् ।
सा किं बध्नाति रतिमितरजनानामपुण्यानाम् ॥७॥

गाथा ११ कुत्रापि न रमते लक्ष्मीः कुलीनधीरेऽपि पण्डिते शूरे ।
पूज्ये धर्मिष्ठेऽपि च सुवृत्तसुजने महासत्त्वे ॥८॥

गाथा १२ तावद् भुज्यतां लक्ष्मीः दीयतां दानं दयाप्रधानेन ।
या जलतरङ्गचपला द्वित्रिदिनानि तिष्ठति ॥९॥

गाथा १३ यो पुनर्लक्ष्मीं संचिनोति न च भुङ्क्ते नैव ददाति पात्रेषु ।
स आत्मानं वञ्चयति मनुजत्वं निष्फलं तस्य ॥१०॥

गाथा १४ यः संचित्य लक्ष्मीं धरणितले संस्थापयत्यतिदूरे ।
स पुरुषः तां लक्ष्मीं पाषाणसमानिकां करोति ॥११॥

गाथा १५ अनवरतं य. संचिनोति लक्ष्मीं न च ददाति नैव भुङ्क्ते ।
आत्मीयापि च लक्ष्मीः परलक्ष्मीसमानिका तस्य ॥१२॥

२४. अनित्यानुप्रेक्षा

गाथा ४ जं किंचि वि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण ।
परिणाम-सरूवेण वि ण य किंचि वि सासयं अत्थि ॥१॥

गाथा ५ जम्मं मरणेण समं संपज्जइ जोव्वणं जरा-सहियं ।
लच्छी विणास-सहिया इय सव्वं भंगुरं मुणह ॥२॥

गाथा ६ अथिरं परियण-सयणं पुत्त-कलत्तं सुमित्त-लावण्णं ।
गिह-गोहणाइ सव्वं णव-घण-विंदेण सारिच्छं ॥३॥

गाथा ७ सुरधणु-तडिव्व चवला इंदिय-विसया सुभिच्च-वग्गा य ।
दिट्ठ-पणट्ठा सव्वे तुरय-गया रहवरादी य ॥४॥

गाथा ८ पंथे पहिय-जणाणं जह संजोओ हवेइ खणमित्तं ।
बंधु-जणाणं च तहा संजोओ अद्धुओ होइ ॥५॥

गाथा ९ अइलालिओ वि देहो ण्हाण-सुयंधेहिँ विविह-भक्खेहिँ ।
खणमित्तेण वि विहडइ जल-भरिओ आम-घडओ व्व ॥६॥

गाथा १० जा सासया ण लच्छी चक्कहराणं पि पुण्णवंताणं ।
सा किं बंधेइ रइं इयर-जणाणं अपुण्णाणं ॥७॥

गाथा ११ कत्थ वि ण रमइ लच्छी कुलीण-धीरे वि पंडिए सूरे ।
पुज्जे धम्मिट्ठे वि य सुवत्त-सुयणे महासत्ते ॥८॥

गाथा १२ ता भुंजिज्जउ लच्छी दिज्जउ दाणं दया-पहाणेण ।
जा जल-तरंग-चवला दो तिण्णि दिणाइ चिट्ठेइ ॥९॥

गाथा १३ जो पुण लच्छिं संचदि ण य भुंजदि णेय देदि पत्तेसु ।
सो अप्पाणं वंचदि मणुयत्तं णिप्फलं तस्स ॥१०॥

गाथा १४ जो संचिऊण लच्छिं धरणियले संठवेदि अइदूरे ।
सो पुरिसो तं लच्छिं पाहाण-समाणियं कुणदि ॥११॥

गाथा १५ अणवरयं जो संचदि लच्छिं ण य देदि णेय भुंजेदि ।
अप्पणिया वि य लच्छी पर-लच्छि-समाणिया तस्स ॥१२॥

स्वामी कुमार (१०-११ वीं शताब्दी) द्वारा रचित—कत्तिगेयाणुवेक्खा (कार्तिकेयानुप्रेक्षा) (श्री नेमिनाथ सदर आदिनाथ उपाध्ये द्वारा सम्पादित तथा श्री रावजी भाई देसाई अगास द्वारा १९६० में प्रकाशित) से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

गाथा ४२६ धर्मं न जानाति जीवोऽथवा जानाति कथमपि कष्टेन ।
कर्तुं ततोऽपि न शक्नोति मोहपिशाचेन भ्रामित ॥

गाथा ४२७ यथा जीव करोति रति पुत्रकलत्रेषु कामभोगेषु ।
तथा यदि जिनेन्द्रधर्मे तल्लीलया सुख लभते ॥

गाथा ४२८ लक्ष्मीं वाञ्छति नरो नैव सुधर्मेषु आदर करोति ।
बीजेन विना कुत्रापि किं दृश्यते सस्यनिष्पत्ति ॥

गाथा ४२९ यो धर्मरथो जीव स रिपुवर्गेऽपि करोति क्षमाभावम् ।
तावत् परद्रव्य वर्जयति जननीसम गणयति परदारान् ॥

गाथा ४३० तावत् सर्वत्रापि कीर्ति तावत् सर्वत्रापि भवति विश्वास ।
तावत् सर्वं प्रिय भाषते तावत् शुद्ध मानस करोति ॥

गाथा ४३१ उत्तमधर्मेण युत भवति तिर्यगपि उत्तमो देव ।
चण्डालोऽपि सुरेन्द्र उत्तमधर्मेण सभवति ॥

गाथा ४३२ अग्निरपि च भवति हिम भवति भुजङ्गोऽपि उत्तम रत्नम् ।
जीवस्य सुधर्माद् देवा अपि च किङ्करा भवन्ति ॥

गाथा ४३३ तीक्ष्ण खड्ग माला दुर्जयरिपव सुखकरा सुजना ।
हालाहलमप्यमृत महापदा सम्पदा भवति ॥

गाथा ४३४ अलीकवचनमपि सत्य उद्यमरहितेऽपि लक्ष्मीसप्राप्ति ।
धर्मप्रभावेण नरोऽनयोऽपि सुखकरो भवति ॥

गाथा ४३५ देवोऽपि धर्मत्यक्तो मिथ्यात्ववशेन तरुवरो भवति ।
चक्री अपि धर्मरहितो निपतति नरके न सन्देह ॥

गाथा ४३६ धर्मविहीनो जीव करोत्यशक्यमपि साहस यद्यपि ।
तत्रापि प्राप्नोति इष्ट सुष्ठु अनिष्ट पर लभते ॥

गाथा ४३७ इति प्रत्यक्ष पश्यत धर्माधर्मयो विविधमाहात्म्यम् ।
धर्मं आचरत सदा पाप दूरेण परिहरत ॥

२५. धर्म-माहात्म्यम्[1]

गाथा ४२६ धम्म ण मुणदि जीवो अहवा जाणेइ कह व कट्ठेण ।
काउं तो वि ण सक्कदि मोहपिसाएण भोलविदो ॥१॥

गाथा ४२७ जह जीवो कुणइ रइ पुत्त-कलत्तेसु काम भोगेसु ।
तह जइ जिणिंद धम्मे तो लीलाए सुह लहदि ॥२॥

गाथा ४२८ लच्छि वछेइ णरो णेव सुधम्मेसु आयर कुणइ ।
बीएण विणा कत्थ वि किं दीसदि सस्स-णिप्पत्ति ॥३॥

गाथा ४२९ जो धम्मत्थो जीवो सो रिउ वग्गे वि कुणइ खम भाव ।
ता पर-दव्व वज्जइ जणणि-समं गणइ पर-दारं ॥४॥

गाथा ४३० ता सव्वत्थ वि कित्ती ता सव्वत्थ वि हवेइ वीसासो ।
ता सव्व पिय भासइ ता सुद्ध माणसं कुणइ ॥५॥

गाथा ४३१ उत्तम धम्मेण जुदो होदि तिरिक्खो वि उत्तमो देवो ।
चंडालो वि सुरिंदो उत्तम धम्मेण संभवदि ॥६॥

गाथा ४३२ अग्गी वि य होदि हिम होदि भुयगो वि उत्तम रयण ।
जीवस्स सुधम्मादो देवा वि य किंकरा होंति ॥७॥

गाथा ४३३ तिक्खं खग्ग माला दुज्जय-रिउणो सुहंकरा सुयणा ।
हालाहल पि अमियं महावया संपया होदि ॥८॥

गाथा ४३४ अलिय वयण पि सच्च उज्जम रहिए वि लच्छि-संपत्ती ।
धम्म पहावेण णरो अणओ वि सुहंकरो होदि ॥९॥

गाथा ४३५ देवो वि धम्मचत्तो मिच्छत्त-वसेण तरुवरो होदि ।
चक्की वि धम्म-रहिओ णिवडइ णरए ण संदेहो ॥१०॥

गाथा ४३६ धम्म विहूणो जीवो कुणइ असक्क पि साहस जइ वि ।
तो ण वि पावदि इट्ठं सुट्ठु अणिट्ठ परं लहदि ॥११॥

गाथा ४३७ इय पच्चक्खं पेच्छह धम्माहम्माण विविह माहप्प ।
धम्मं आयरह सया पाव दूरेण परिहरह ॥१२॥

---

१ इस सन्दर्भ 'कात्तिकेयानुप्रेक्षा' के समान।

जैन-महाराष्ट्री प्राकृत

प्रमुख विशेषताएँ

(१) अनादि असंयुक्त क, ग, आदि व्यञ्जनों का लोप हो जाता है। यदि लुप्त व्यञ्जनों के अनन्तर अ या आ हो तो यश्रुति होती है।

राजधूता = रायधूया, निपतिता = निवडिया, वचनम् = वयणं, भगवती = भयवई।

(२) कुछ स्थलों पर अनादि असंयुक्त क लुप्त न होकर अर्धमागधी प्राकृत की भाँति ग मे परिवर्तित हो जाता है।

एकाकिनी = एगागिणी, आकृति = आगिई, शोक = सोगो, अनुकरोति = अणुगरेइ।

(३) शब्द के प्रारम्भ मे स्थित न तथा मध्य में स्थित न्न प्रायः अपरिवर्तित रहता है।

मुनिकुमारेण = मुणिकुमारेण, नाभि = नाही, दर्शनम् = दंसण, अन्यथा = अण्णहा, विपन्न = विवन्नो।

---

१ श्वेताम्बर जैनों के आगमेतर प्राकृत-ग्रन्थो की भाषा में महाराष्ट्री प्राकृत के साथ साथ यत्र तत्र अर्धमागधी प्राकृत के भी प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। इसलिए इसे "जैन महाराष्ट्री"—नामक सज्ञा दी गई है। यह नाम सुविधा की दृष्टि से पाश्चात्य विद्वानो द्वारा रखा गया है। कालान्तर में यही भाषा अर्धमागधी प्राकृत के प्रभाव से मुक्त होकर महाराष्ट्री प्राकृत के रूप मे हमारे सामने आई। अत जैन महाराष्ट्री प्राकृत को हम महाराष्ट्री प्राकृत का प्रारम्भिक रूप कह सकते हैं। हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण में लुप्त व्यञ्जनो के स्थान पर केवल अ या आ परे रहते यश्रुति एव शब्द के प्रारम्भिक न को वैकल्पिक ण आदेश का विधान इस बात का सकेत है कि हेमचन्द्र जैनमहाराष्ट्री को भी उस भाषा के अन्तर्गत मानते थे जिसे उन्होने सामान्य प्राकृत नाम से कहा है।

(४) शब्दरूप तथा धातुरूप भी प्राकृत के सामान्य नियमों के अनुसार चलते हैं किन्तु कहीं कहीं अर्धमागधी के प्रयोग भी मिलते हैं। जैसे तृतीया विभक्ति के एकवचन में मणसा, वयसा, कायसा आदि शब्दरूप एवं वर्तमानकाल प्रथमपुरुष एकवचन में कुव्वइ, आइक्खइ आदि धातुरूप।

(५) कहीं कहीं समस्तपद में उत्तरपद के पूर्व अनुस्वार (म्) का आगम हो जाता है। जैसे—निरयगामी = निरयंगामी।

(६) अर्धमागधी की तरह कहीं कहीं यथा के स्थान पर जहा एवं अहा तथा यावत् के स्थान पर जाव एवं आव आदेश होते हैं।

(७) अर्धमागधी की तरह क्त्वा के स्थान पर कहीं कहीं इत्ता आदेश भी हो जाता है। वन्दित्वा = वन्दित्ता, आर्द्रयित्वा = उल्लेत्ता।

(संस्कृतच्छाया)

इतश्च सा राजदुहिता 'कुत्र आर्यपुत्रः' इति गवेषयन्ती निपतिता कान्तारमध्ये। मूढा दिशः। अप्रेक्षमाणा दयितं भ्रान्ता महाटव्याम्। परिगतप्राये वासरे समागता गिरिनदीम्। न दृष्ट आर्यपुत्र इति विषण्णा हृदयेन। चिन्तितं च तया। अलं मे आर्यपुत्रविरहिताया जीवितेन। क्षत एतस्मिन्नशोकपादपे उल्लम्बे आत्मानमिति। निबद्धो वल्ल्या पाशः। न्यस्ता शिरोधरा। भणितं च तया—भगवत्यो वनदेवताः, न मया आर्यपुत्रं मुक्त्वा अन्यो मनसापि चिन्तितः। अनेन सत्येन जन्मान्तरेऽपि आर्यपुत्र एव भर्ता भवेदिति कृतं निदानम्। प्रवाहित आत्मा, त्रुटितस्तस्याः पाशः, निपतिता धरणीपृष्ठे, गता मूर्छाम्। दृष्टाऽऽसन्नतपोवनवासिना संध्योपासननिमित्तमागतेन मुनिकुमारकेन। चिन्तितं च तेन-हा का पुनरेषा वनदेवतेव स्त्री निपतिता धरणीपृष्ठे। अथवा किं मम स्त्रिया। अन्यतो गच्छामि। वारितं खलु समये स्त्रीदर्शनम्। भणितं च तत्र—अपि चाञ्जितव्यानि तप्तलोहशलाकयाऽक्षीणि, न द्रष्टव्या च अङ्गप्रत्यङ्गसंस्थानेन स्त्री, अपि च भक्षितव्यं विषम्, न सेवितव्या विषयाः, छेत्तव्या जिह्वा, न जल्पितव्यमलीकमिति। ततः किं ममानया, अनधिकारश्चैव मुनिजनस्य। अथवा दीनजनाभ्युद्धरणमपि समशत्रुमित्रतया प्रतिपादितमेव। भणितं च तत्र। आत्मनिर्विशेषं द्रष्टव्याः सर्वप्राणिनः, प्रवर्तितव्यं हिते यथाशक्ति, अभ्युद्धर्तव्या दीनाः, न खल्वहिंसातोऽन्यद् धर्मसाधनमिति। दीना चैषा। अन्यथा कुत्रारण्यम्, कुत्रैकाकिनी स्त्री। ततः प्रेक्षे तावत् का पुनरेषा, मा नाम विद्याधरी प्रसुप्ता भवेत्। दृष्टा मुनिकुमारेण। दृष्टस्तस्याः पाशः। विषण्णो मुनिकुमारः। चिन्तितं च तेन—अहो एषाऽऽकृतिः, एष च पाश इति विरुद्धमेतत्। अथवा नास्ति कर्मपरिणत्या विरुद्धमिति।

२६. पतिविरहिता राजदुहिता[1]

इओ य रायधूया 'कहिं अज्जउत्त' त्ति गवेसमाणी निवडिया कन्तारमज्झे। मूढाओ दिसाओ। अपेच्छमाणी दइयय भमिया महाडवीए। परिणयप्पाए वासरे समागया गिरिनइं। न दिट्ठो अज्जउत्तो त्ति विसण्णा हियएण। चिन्तियं च णाए। अल मे अज्जउत्तविरहियाए जीविएण। ता एयम्मि असोअपायवे उवकल्बेमि अत्ताणयं। निबद्धो वल्लीए पासओ। निमिया सिरोहरा। भणियं च णाए। भयवईओ वणदेवयाओ, न मए अज्जउत्त मोत्तूण अन्नो मणसा वि चिन्तिओ। इमिणा सच्चेण जम्मन्तरम्मि वि अज्जउत्तो चेव भत्ता हवेज्ज त्ति कयं नियाणं। पगाहिओ अप्पा, तुट्टो से पासओ, निवडिया धरणिवट्टे, गया मुच्छं। दिट्ठा आसन्नतवोवणवासिणा सक्षोवासणनिमित्तमागएण मुणिकुमारएण। चिन्तियं च णेणं। हा का उण एसा वणदेवया विव इत्थिया निवडिया धरणिवट्टे। अहवा किं मम इत्थियाए। अन्नओ गच्छामि। वारियं खु समए इत्थियादसणं। भणियं च तत्थ। अवि य अग्गिवण्णाइं तत्तलोहसलायाए अच्छीणि, न दट्ठव्वा य अङ्गपच्चङ्गसठाणेण इत्थिया, अवि य भक्खियव्वं विसं, न सेवियव्वा विसया, छिन्दियव्वा जीहा, न जपियव्वमलियं ति। ता किं मम इमीए, अणहियारो य एसो मुणिजणस्स। अहवा दीणजणअब्भुद्धरणं पि समसत्तुमित्तयाए पडिवाइयमेव। भणियं च तत्थ। अत्ताणनिव्विसेस दट्ठव्वा सव्वपाणिणो, पवत्तियव्वं हिए जहासत्तीए, अब्भुद्धरेयव्वा दीणया, न खलु अहिंसाओ अन्न धम्मसाहणं ति। दीणा य एसा। अन्नहा कहिं रण्णं, कहिं एगागिणी इत्थिया। ता पेच्छामि ताव, का उण एसा, मा नाम विज्जाहरी पमुत्ता भवे। पुलइया मुनिकुमारेण। दिट्ठो से पासओ। विसण्णो मुणिकुमारो। चिन्तियं च णेण। अहो एसा आगिई एसो य पासओ त्ति विरुद्धमेयं। अहवा नत्थि कम्मपरिणईए विरुद्धं ति।

---

१. श्री हरिभद्रसूरि (७०० ७७० ई०) विरचिता-समराइच्चकहा (भगवानदास द्वारा सशोधित तथा हीरालाल द्वारा शारदा मुद्रणालय अहमदाबाद से १९४२ में प्रकाशित) के द्वितीय भाग (सप्तमभव पृ० ६६२-६४) से उद्धृत।

(संस्कृतच्छाया)

भणिता च तेन—आर्ये ! मा रुदिहि। ईदृश एष संसार, विचित्रतया कर्मपरिणामस्यानुकरोति नटपेटकम्। क्षणेन वियोग, तेनैव सगम, क्षणेन शोक तेनैव प्रमोद, क्षणेनापद्, तेनैव संपदिति। एवंविधे चैतस्मिन् बुद्धिमता सत्त्वेन आपतितेऽपि विषमदशाविभागे न सेवितव्यो विषाद, न कर्त्तव्यमनुचितम्, न मोक्तव्यं सत्त्वम्, न उज्झितव्य उत्साह। एवं च वर्तमान सत्व पुरुषकारजेयं कर्म क्षपयित्वा लङ्घयत्यापदम्। तत आर्ये ! मुञ्च विषादम्। पुनरपि च करुणाप्रपन्नचित्तेन 'कालोचितमिदम्' इति विशेषतो निरूप्य भणित मुनिकुमारकेन। अन्यच्च, लक्षणतोऽवगच्छामि, न विपन्नस्ते भर्ता, यत शुभफलोदय आभोग, कनकायदाता देहच्छवि, परभृतालपित-मनोहर शब्द सुप्रतिष्ठितौ चरणौ, विकट नितम्बफलकम्, दक्षिणावर्त-संगता नाभि, अम्लानकान्तिशोभौ करौ, सम्पूर्णकलामृगाङ्क इव परिमण्डल वदनकमलम्, मधुगुलिकासदृशे लोचने, सुप्रतिष्ठितस्निग्ध-तिलकभूषित ललाट, श्लक्ष्णकृष्णकुटिला शिरोरुहा। तथा एवं-विधैर्लक्षणैर्न नारी वैधव्यदु खमनुभवति, पुत्रभागिनी च भवतीति। तत एहि वत्से ! कुलपतिं वन्दस्वेति। ततो 'यद् भगवान् आज्ञापयति' इति भणित्वा गता तपोवनम्। वन्दित कुलपति, अभिनन्दिता च तेन। कथितो व्यतिकरो मुनिकुमारकेन। समाश्वासिता कुलपतिना, भणिता च तेन। वत्से न संतप्तव्यम्। ज्ञानतोऽवगच्छामि, स्तोकदि-वसैरेवात्र तपोवने भविष्यति ते समागम प्रियतमेनेति। ततो 'नान्यथा ऋषिवचनम्' इति प्रतिश्रुतमनया। समर्पिता तापसीनां कुलपतिना।

२७. समाश्वासिता राजदुहिता[1]

भणिया य णेण। अज्जे, मा रूय। ईइसो एस संसारो, विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स अणुगरेइ नडपेड्यं। खणेण विओगो, तेणेव संगमो; खणेण सोगो, तेणेव पमोओ; खणेण आवया, तेणेव संपय त्ति। एवंविहे य एयंमि बुद्धिमन्तेण सत्तेण आवडिए वि विसमदसा-विभाए न सेवियव्वो विसाओ, न कायव्वमणुचियं, न मोत्तव्वं सत्तं, न उज्झियव्वो उच्छाहो। एवं च वट्टमाणो सत्तो पुरिसयारजेयं कम्मं खविऊणं लङ्घेइ आवयं। ता अज्जे मुञ्च विसायं। पुणो वि य करुणापवन्नचित्तेण 'कालोचियमिणं' ति विसेसओ निरूविऊण भणियं मुणिकुमारएणं। अन्नं च। लक्खणओ अवगच्छामि, न विवन्नो ते भत्ता, जओ सुहफलोदओ आभोगो कणगावदाया देहच्छवी, परहुयालवियमणहरो सद्दो, सुपइट्ठिया चलणा, वियडं नियम्बफलयं, दाहिणावत्तसंगया नाही, अमिलाणकन्तिसोहा करा, संपुण्णकलामियंको व्व परिमण्डलं वयणकमलं, महुगुलियासरिसाइं लोयणाइं, सुपइट्ठियनिद्धतिलयभूसियं निडालं, सिहिण-किण्हकुडिला सिरोरुहा। ता एवंविहेहि लक्खणेहि न नारी वेहव्व-दुक्खमणुहवइ, पुत्तभाइणी य होइ त्ति। ता एहि वच्छे, कुलवइं वन्दसु त्ति। तओ 'जं भयवं आणवेइ' त्ति भणिऊण गया तवोवणं। वन्दिओ कुलवई, अहिणन्दिया य णेण। साहिओ वइयरो मुणिकुमारएण। समासासिया कुलवइणा, भणिया य णेणं। वच्छे न संतप्पियव्वं। नाणओ अवगच्छामि थेवदियहेहिं चेव एत्थं तवोवणे भविस्सइ ते समागमो पिययमेणं ति। तओ 'न अन्नहा रिसिवयणं' ति पडिस्सु-यमिमीए। समप्पिया तावसीणं कुलवइणा।

१. समराइच्चकहा द्वितीयभाग—पृ० ६६५-६६६।

(संस्कृतच्छाया)

गजशङ्खलक्ष्मीकलितं विष्णुतनूरिव सुदर्शनाधारम् ।
सुविराजितं वरे रत्ने रत्नपुरनगरम् ॥ १ ॥

तत्रास्ति वणिक्प्रधान सुधन श्रेष्ठी धनद इव धनकलित ।
तस्यापि च प्रिया सीता शीलगुणपूर्णमाहात्म्या ॥ २ ॥

अथान्यदा च तयोर्जातस्तनयो गुणाना कुलभवनम् ।
धनसारो नाम्ना, मित्र तस्यास्ति वणिक्सुत ॥ ३ ॥

नाम्ना रूपेण च मदनो धनसारमित्रसहित स ।
क्रीडति काननादिषु निरङ्कुशो मत्तहस्तीव ॥ ४ ॥

अथान्यदा प्रवृत्ते वसन्तसमये समयसारमुनिम् ।
पश्यति प्रशान्तमूर्त्तिमुद्याने कुसुमसारे ॥ ५ ॥

त दृष्ट्वा प्रभणति मदनो, धनसार ! शारदशशिनमिव ।
मनोनयनानन्दकर वन्दावहे मुनिवरमेतम् ॥ ६ ॥

इति भणित्वा वन्दित स ध्यान संहृत्य धर्मलाभेन ।
अभिनन्दितावनेन द्विजेनैकेन ततो भणितम् ॥ ७ ॥

किं भो ! मा मुक्त्वैव शूद्रोऽभिवादित एवम् ।
प्राप्ते ! मानससरसि क पिबति खातिकानीरम् ॥ ८ ॥

ततस्ताभ्या स भणितो ब्राह्मण ! मा भणेदृश वचनम् ।
ब्राह्मणशब्दार्थयुत किमेष न ब्राह्मणो भवति ॥ ९ ॥

मा जहि मा जहि जीवान् मा भण मा भणतालीकवचनानि ।
मा हरत परधनानि मा गृध्यत युवतिदेहेषु ॥१०॥

मा मूर्च्छा कुरुत परिग्रह इत्यादि ददात्युपदेशम् ।
अब्रह्मणो विरतो य खलु त ब्राह्मण ब्रुवन्ति ॥११॥

तत एवमादिगुणसगतोऽपि कथ सोम ! ब्राह्मणो नैष ।
स एव भवति शूद्रो य खलु पूर्वोक्तगुणविकल ॥१२॥

इति वचनामृतोपशान्तामिताज्ञानरोगसताप ।
वन्दित्वा द्विज साधु सविनयमवनावुपविष्ट ॥१३॥

२८. ब्राह्मणलक्षणम्[1]

गयसखलच्छिकलिय विण्हुतणु पिव सुदसणाहार ।
सुविराइयं वरेहिं रयणेहिं रयणपुरनयर ॥ १ ॥
तत्थत्थि वणिप्पहाणो सुधणो सिट्ठी धणो व्व धणकलिओ ।
तस्सवि य पिया सीया सीलगुणग्घवियमाहप्पा ॥ २ ॥
अह अन्नया य ताण जाओ तणओ गुणाण कुलभवण ।
धणसारो नामेण, मित्तो तस्सत्थि वणियसुओ ॥ ३ ॥
नामेण रूवेण य मयणो धणसारमित्तसहिओ सो ।
कीलेइ काणणाइसु निरकुसो मत्तहत्थि व्व ॥ ४ ॥
अह अन्नया पयट्टे वसतसमयम्मि समयसारमुणि ।
पासइ पसत्तमुत्ति उज्जाणे कुसुमसारम्मि ॥ ५ ॥
तं दट्ठूण पभणइ मयणो धणसार ! सारयससि व ।
मणनयणाणदयर वदेमो मुणिवर एय ॥ ६ ॥
इय भणिय वदिओ सो, झाण सट्ठिय धम्मलाभेण ।
अभिणदिया इमेण दिएण एक्केण तो भणिय ॥ ७ ॥
किं भो ! म मुत्तूण एसो सुद्दोऽभिनाइओ एव ।
एतम्मि माणससरे को घुटइ खाइयानीर ॥ ८ ॥
तो तेहिं सो भणिओ माहण ! मा भणसु एरिस वयण ।
माहणसद्दत्थजुओ किं एस न माहणो होइ ॥ ९ ॥
मा हण मा हण जीवे मा भण मा भणह अलियवयणाइ ।
मा हरह परधणाइ मा गिज्झह जुवइदेहेसु ॥१०॥
मा मुच्छ कुणह परिग्गहम्मि इच्चाइ देइ उवएस ।
अरभाओ विरओ जो खलु त माहण बिंति ॥११॥
तो एवमाइगुणसगओ वि कह सोम ! माहणो नेसो ।
सो चेव होइ सुद्दो जो खलु पुव्वुत्तगुणवियलो ॥१२॥
इय वयणामयउवसमियअमियअन्नाणरोयसतावो ।
वदेवि दिओ साहु सविणयमवणीए उवविट्ठो ॥१३॥

---

1 श्री लक्ष्मणगणि (११४२ ई०) विरचित—सुपासनाहचरिअं (प० हरगोविन्द सेठ द्वारा सम्पादित तथा बनारस से १९१८ म प्रकाशित) के द्वितीय भाग पृष्ठ ३१० से उद्धृत ।

(संस्कृतच्छाया)

अस्त्यवन्तीविषय उज्जयिनी पुरीवरा जगत्प्रसिद्धा ।
कुलभूषणश्च श्रेष्ठी तद्भार्या भूषणा नामा ॥ १ ॥

तयो सुत सजातो दुर्गो नाम्ना यौवनस्थोऽपि ।
बाल एव चेष्टयोन्मत्तो भ्रमति पुरमध्ये ॥ २ ॥

दौर्भाग्यकर्मवशतो रमणी मनसापि न प्रार्थयते ।
स्नेहेनाप्यालपिताऽऽक्रोशास्तस्य प्रयच्छति ॥ ३ ॥

दौर्भाग्यतर्जितेन पृष्ट कापालिकस्ततस्तेन ।
तव काप्यस्ति विद्या सौभाग्यकरी विशेषेण ॥ ४ ॥

भणत्यस्ति त्रिपुराविद्या सद्योऽपि ददाति सौभाग्यम् ।
या स्मरणमात्रेणापि विधिना ससाधिता सती ॥ ५ ॥

ततो भणितं दुर्गेण यद्येवं तदा प्रयच्छ मे विद्याम् ।
कृत्वा गुरुप्रसाद तेनापि विधिना वितीर्णा सा ॥ ६ ॥

कणवीरकुसुमलक्ष सगुग्गुलु गृहीत्वाऽन्यदा दुर्गः ।
त्रिपुराविद्यादेवीप्रसाधनार्थं गतो मलये ॥ ७ ॥

तावद्यावत्तत्र नृपमन्दिरस्य द्वारे केवली दृष्ट ।
देशयन् सुगतिपथ किन्नरनरसुरसमूहस्य ॥ ८ ॥

तत परिचिन्तयति नून सौभाग्यगुणनिधिरेष ।
सिद्धत्रिपुरादिविद्य कोऽपि महात्मा महासिद्ध ॥ ९ ॥

सातिशयैव विद्यैतस्य कापालिकात् तस्मादेनम् ।
प्रार्थये काम‍पि विद्यामिति हेतोर्वन्दित साधु ॥१०॥

तेनापि धर्मलाभो दत्त सभापितश्चोपविष्ट ।
मुनिनापि समारब्धा धर्मकथा तमप्युद्दिश्य ॥११॥

२९ दुर्गं प्रति मुनेरूपदेशः[1]

अत्थि अवंतीविसए उज्जेणी पुरवरी जयपसिद्धा ।
कुलभूसणो य सिट्ठी तब्भज्जा भूसणा नामा ॥१॥
ताण सुओ संजाओ दुग्गो नामेण जोव्वणत्थो वि ।
बालो चिय चिट्ठाए उम्मत्तो भमइ पुरमज्झे ॥२॥
दोहग्गकम्मवसओ रमणी मणसा वि तं न पत्थेइ ।
नेहेण वि आलविया अक्कोसे से पयच्छेइ ॥३॥
दोहग्गतज्जिएण पुट्ठो कावालिओ तओ तेण ।
तुह कावि अत्थि विज्जा सोहग्गकरी विसेसेण ॥४॥
सो भणइ अत्थि तिपुराविज्जा सज्जो वि देइ सोहग्गं ।
जा सुमरणमित्तेण वि विहिणा ससाहिया संती ॥५॥
तो भणिय दुग्गेण जइ एव ता पयच्छ मे विज्जं ।
काऊण गुरुपसायं तेण वि विहिणा विइन्ना सा ॥६॥
कणवीरकुसुमलक्खं सगुग्गुलं गहिवि अन्नया दुग्गो ।
तिपुराविज्जादेवीपसाहणत्थं गओ मलए ॥७॥
ता जाव तत्थ जिनमन्दिरस्स दारम्मि केवली दिट्ठो ।
देसंतो सुगइपहं किंनरनरसुरसमूहस्स ॥८॥
तत्तो सो परिचिंतइ नूणं सोहग्गगुणनिही एसो ।
सिद्धतिपुराइविज्जो को वि महप्पा महासिद्धो ॥९॥
साइसय चिय विज्जा एयस्स कावालियाउ, ता एयं ।
पत्थेमि किं पि विज्जं इय हेऊ वंदिओ साहू ॥१०॥
तेणावि धम्मलाभो दिन्नो समासिओ य उवविट्ठो ।
मुणिणावि समारद्धा धम्मकहा [redacted] पि उद्दिसिउ ॥११॥

---

१ श्री लक्ष्मणगणि विरचित सुपासनाहचरिअं, द्वितीय भाग पृष्ठ ३९६-९८ से उद्धृत ।

कामं कामासक्तो विद्यामन्त्रैश्चूर्णयोगैः ।
रमणीर्मोहयित्वा यो भुङ्क्ते स च कालेन ॥१२॥

न च मुञ्चति परदारान् गम्यागम्यां च न त्यजति कदापि ।
इह जन्मन्यपि प्राप्नोति पापस्ततस्तीक्ष्णदुःखानि ॥१३॥

अधिकं तथा दौर्भाग्यं भवत्यनिष्टश्च सर्वलोकस्य ।
दौर्भाग्यदुःखनटितः स भ्रमति भीमभवगहने ॥१४॥

न्यायागता अपि भोगा भयवहा, कर्मबन्धहेवश्च ।
किं पुनरुन्मार्गगता समर्गलं गलितगुणगरिमाण ॥१५॥

इतरस्तनुरपि गुणो मा भवतु, भवतु केवलं शीलम् ।
यो जीवानां मनोवाञ्छितानि कार्याणि पूरयति ॥१६॥

यशोविभवहानिपरिभवस्खलद्दुःखप्रमुखदोषद्वन्द्वाली ।
शीलविकलानां पुरुषाधमानां नूनं समापतति ॥१७॥

पञ्चैते महापापा भणिता सर्वज्ञेनेह ।
येभ्यः प्राप्नुवन्ति दुःखानि पापबुद्धयो नराधमाः ॥१८॥

भूतहिंसा मृषावादश्चोरिका मैथुनं तथा ।
परिग्रहो महारम्भो महाशब्दाही इमे ॥१९॥

इत्यादिदेशनां श्रुत्वा संवेगमागता परिषत् ।
दुर्गोऽपि भणति भगवन् । पञ्चमहापापपरिहारः ॥२०॥

कर्त्तव्यस्तस्मात्संप्रति नियमं मे देहि, ज्ञानिना दत्त ।
सम्यक्त्वपूर्वकं स नत्वा मुनिं गतो गेहे ॥२१॥

कामं कामासत्तो विज्जामंतेहिं चुन्नजोगेहिं ।
रमणीउ मोहिऊणं जो भुंजइ सो य कालेण ॥१२॥

न य मुंचइ परदारं गम्मागम्मं च न चयइ कयावि ।
इह जम्मम्मि वि पावइ पावो तो तिक्खदुक्खाइं ॥१३॥

अहियं तह दोहग्ग होइ अणिट्ठो य सव्वलोयस्स ।
दोहग्गदुक्खनडिओ सो भमइ भीमभवगहणे ॥१४॥

नायागया वि भोगा भयावहा कम्मबंधहेऊ य ।
किं पुण उम्मग्गगया समग्गलं गलियगुणगरिमा ॥१५॥

इयरो तणुओ वि गुणो मा होउ, हवेउ केवलं सीलं ।
जो जीवाणं मणवंछियाइ कज्जाइं पूरेइ ॥१६॥

जसविहवहाणिपरिभवकलंकदुहप्पमुहदोसदंदोली ।
सीलवियलाण पुरिसाहमाण नूणं समावडइ ॥१७॥

पच एए महापावा भणिया सव्वन्नुणा इह ।
जेसिं पावंति दुक्खाइं पावबुद्धी नराहमा ॥१८॥

भूयहिंसा मुसावाओ चोरिया मेहुणं तहा ।
परिग्गहो महारंभो महासद्दारिहा इमे ॥१९॥

इच्चाइ देसणं निसुणिऊण संवेगमागया परिसा ।
दुग्गो वि भणइ भयवं पंचमहापावपरिहारो ॥२०॥

कायव्वो ता संपइ नियमं मे देहि, नाणिणा दिन्नो ।
सम्मत्तपुव्वगं सो नमिऊण मुणिं गओ गेहे ॥२१॥

तालव्य वर्ण	Palatal consonant
तृतीया विभक्ति	Instrumental case
दन्त्य वर्ण	Dental consonant
द्वितीया विभक्ति	Accusative case
द्विवचन	Dual number
द्वन्द्व समास	Copulative compound
धातुरूप	Conjugation of verb
नपुंसक लिङ्ग	Neuter gender
पञ्चमी विभक्ति	Ablative case
पुल्लिँङ्ग	Masculine gender
प्रथमा विभक्ति	Nominative case
प्रेरणार्थक	Causative
बहुवचन	Plural number
बहुव्रीहि समास	Attributive compound
भूत-कृदन्त	Past Participle
मूर्धन्यवर्ण	Cerebral consonant
लिङ्ग	Gender
लिङ्गानुशासन	Law of grammatical gender
वचन	Number
वर्तमान-कृदन्त	Present participle
वर्तमान काल	Present tense
विध्यर्थक	Optative (Potential)
विभक्ति	Case
विसर्ग	A kind of aspirate denoted by h
व्यञ्जन सन्धि	Combination of consonants
व्यञ्जनान्त	Bases ending in consonant
शतृ, शानच् प्रत्यय	Affixes of the Present Participle
शब्दरूप	Declension of word
षष्ठी विभक्ति	Genitive

संख्या वाचक	Numeral
संयुक्तपरिवर्तन-व्यञ्जन	Change of Compound consonants
सन्धि	Combination of two letters
सप्तमी विभक्ति	Locative
समानीकरण का नियम	Law of Assimilation
समास	Compound
सम्बन्धसूचक-भूतकृदन्त	Prepositional past participle or Indeclinable participle
सम्बोधन	Vocative
सरलव्यञ्जन-परिवर्तन	Change of Single consonant.
सर्वनाम	Pronoun
स्त्रीप्रत्यय	Affix of the Feminine
स्त्रीलिङ्ग	Feminine Gender
स्वरपरिवर्तन	Change of vowel
स्वरभक्ति	Vowel-separation
स्वरसन्धि	Combination of vowels
स्वरान्त	Bases ending in vowel
हकारयुक्तवर्ण	Aspirate
हेत्वर्थक	Infinitive

(ख) अंग्रेजी-हिन्दी

Ablative Case	पञ्चमी विभक्ति
Accusative Case	द्वितीया विभक्ति
Active Voice	कर्तृवाच्य
Affix of the Feminine	स्त्री प्रत्यय
Affixes of the Present Participle	शतृ, शानच् प्रत्यय

परिशिष्ट

१. पारिभाषिक शब्द

(अ) हिन्दी–अंग्रेजी

अकारान्त शब्द	a-stem word
आज्ञार्थक	Imperative
अनुनासिक	Nasal
अन्तःस्थ	Semivowel
अव्यय	*Indeclinable*
अव्ययीभाव समास	Indeclinable compound or Adverbial compound.
इकारान्त शब्द	i-stem word
उकारान्त शब्द	u-stem word
एक वचन	Singular number
कर्तृवाच्य	Active voice
कर्मवाच्य	Passive voice
कर्मधारय समास	Appositional compound
कारक	Government (of the cases)
कृत्प्रत्यय	Primary affix (to form word from root)
क्रियातिपत्ति	Conditional with negative implication
चतुर्थी विभक्ति	Dative
तर, तम प्रत्यय	*Terminations of the comparative and superlative degrees*
तत्पुरुष समास	Determinative compound.
तद्धितप्रत्यय	Secondary affix (to form word from word)

A kind of aspirate denoted by h	विसर्ग
Appositional compound	कर्मधारय समास
Aspirate	हकारयुक्त वर्ण
a-stem word	अकारान्त शब्द
Atributive compound	बहुव्रीहि समास,
Bases ending in consonant	व्यञ्जनान्त
Bases ending in vowel	स्वरान्त
Case	विभक्ति
Causative	प्रेरणार्थक
Cerebral consonant	मूर्धन्य वर्ण
Change of compound consonant	सयुक्तव्यञ्जन-परिवर्तन
Change of single consonant	सरलव्यञ्जन परिवर्तन
Change of vowel	स्वर परिवर्तन
Compond	समास
Conditional with negative implication	क्रियातिपत्ति
Conjugation of Verb	धातुरूप
Copulative compound	द्वन्द्वसमास
Dative case	चतुर्थी विभक्ति
Declension of word	शब्दरूप
Dental consonant	दन्त्यवर्ण
Determinative compound	तत्पुरुषसमास
Daul number	द्विवचन
Feminine gender	स्त्रीलिङ्ग
Gender	लिङ्ग
Genitive case	षष्ठी विभक्ति
Government (of the cases)	कारक
Imperative	आज्ञार्थक
Indeclinable	अव्यय

Indeclinable compound	अव्ययीभाव समास
Infinitive	हेत्वर्थक
Instrumental case	तृतीया विभक्ति
i-stem word	इकारान्त शब्द
Law of Assimilation	समानीकरण का नियम
Law of grammatrical gender	लिङ्गानुशासन
Locative case	सप्तमी
Masculine gender	पुल्लिङ्ग
Nasal	अनुनासिक
Neuter gender	नपुंसकलिङ्ग
Nominative case	प्रथमा विभक्ति
Number	वचन
Numeral	संख्यावाचक
Optative (potential)	विध्यर्थक
Palatal consonant	
Passive voice	कर्मवाच्य
Past participle	भूतकृदन्त
Plural number	बहुवचन
Prepositional Past Participle or Indeclinable Past Participle	सम्बन्धसूचक-भूतकृदन्त
Present tense	वर्तमानकाल
Present Participle	वर्तमान कृदन्त
Primary affix (to form word from root)	कृत्प्रत्यय
Pronoun	सर्वनाम
Secondary affix (to form word from word)	तद्धितप्रत्यय
Semivowel	अन्तःस्थ
Singular number	एकवचन

Terminations of comparative and superlative degrees	तर, तम प्रत्यय
u-stem word	उकारान्त शब्द
Vocative	सम्बोधन
Vowel separation	स्वरभक्ति

२. देशी-शब्द

आवुत्त	भगिनीपति (इसे संस्कृत में भी अपना लिया गया है)
कच्छ	वस्त्र
कोड्ड	कौतुक
कोससदचट्टिणी	सैकड़ों झूठी शपथें खानेवाली स्त्री
चंपिअ	पीड़ित
टेण्टाकराले	छाती के शुष्क व्रण को विकसित करनेवाली (एक प्रकार की गाली)
णूम	छादय् (छिपाना)
पाडिसिद्धि	प्रतिस्पर्धा
पोट (पोट्ट)	उदर
भोलविदो	भ्रामित, वञ्चित
वाउल्लअ	पुत्तलक (पुतला)
विंदुरिल्ल	उज्ज्वल
समसीसिआ	स्पर्द्धा
साहुलिआ	शाटिका (वस्त्र)
हक्क	पुकारना
ही अविद	विषादसूचक अव्यय
वरिल्ल	वस्त्र

सहायक ग्रन्थों की सूची

भिज्ञानशाकुन्तलम्—Monier Williams, Oxford, 1876

सवहो—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, १९४०

त्तगेयाणुप्पेक्खा—रावजी भाई देसाई, अगास, १९६०

पूरमञ्जरी—मोतीलाल बनारसीदास नेपाली खपड़ा, वाराणसी, १९६३

उडवहो—Bhandarkar Oriental Research Institute Poona, 1927.

ाथासप्तशती—प्रसाद प्रकाशन पूना—२, १९५६

ारुदत्त—अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावली, १९२२

नरयावलीओ—Dr P L Vaidya Nowrosjee Wadia college, Poona, 1932

प्राकृतप्रकाश—Edward Byles Cowell, Stephen Austin Hertford, 1853

प्राकृत भाषाओं का व्याकरण— बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, १९५८

प्राकृत व्याकरण (हेमचन्द्र) सम्पादक—P L Vadiya, Motilal Ladhaji, 196, Bhavani Peth Poona city, 1928.

मृच्छकटिक—Stenzler, Bonnae, 1847

रावणवह महाकाव्यम्—Sanskrit College Culcutta, 1954.

लीलावई-सिंघी जैनशास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्याभवन बम्बई-७ १९४९

ववागसुयं—P L Vaidya Nowrosjee Wadia College Poona, 1935.

वज्जीसहार—Julius Grill, Leipzig, 1871.